सोमसी

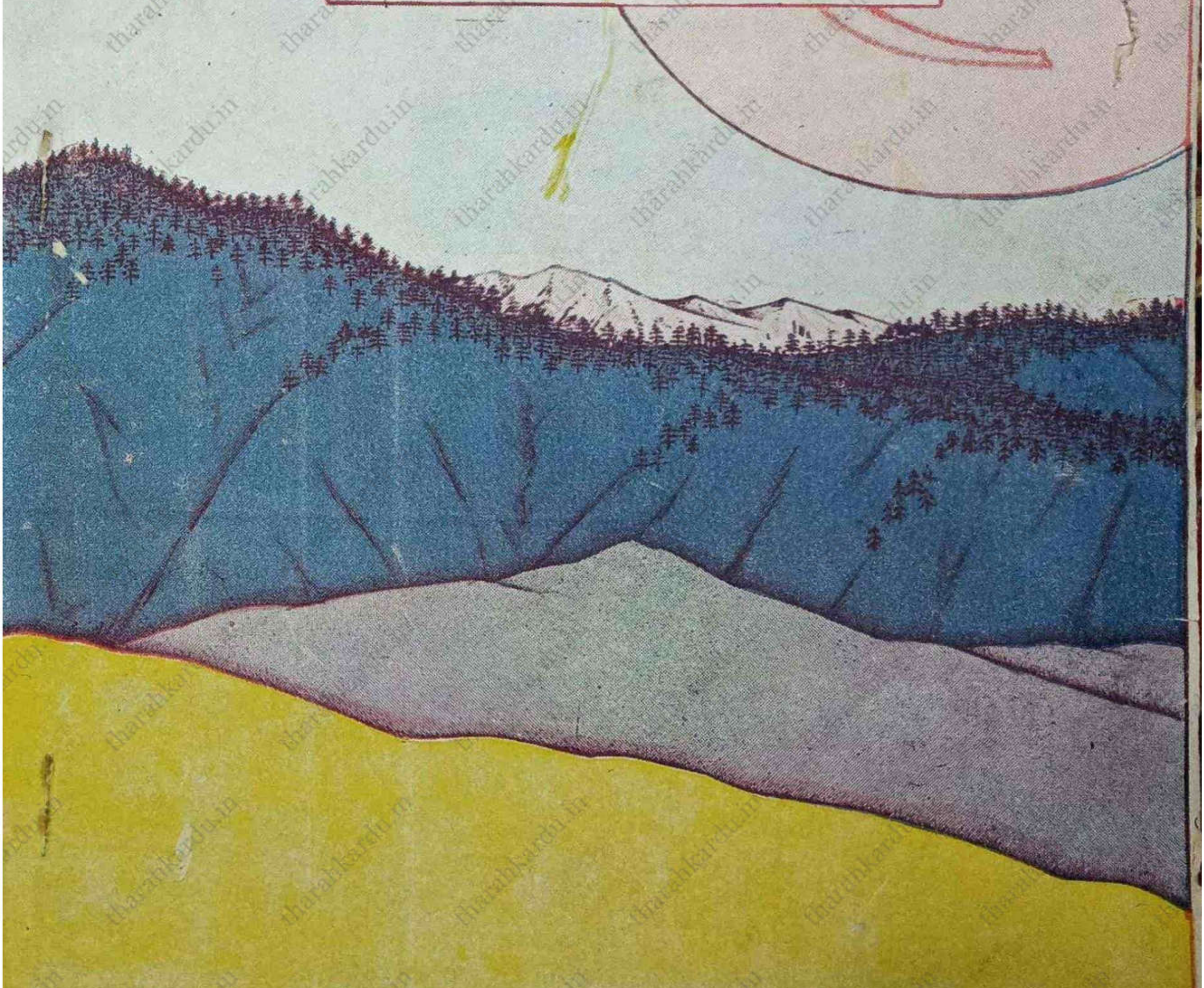

जुलाई, 1983

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
शिमला

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी
की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 9 | जुलाई 1983 | अंक 3

मुख्य सम्पादक,
वीरभद्र सिंह
अध्यक्ष अकादमी

सम्पादक
मौलूराम ठाकुर

सहयोगी
सरोज सांख्यान

आवरण
ओम प्रकाश

३५

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्य नहीं

वार्षिक चन्दा १२ रूपये

एक प्रति ३ रूपये

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी
क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-१७१००१

विषयानुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृष्ठ
1	हिमाचल के क्रांतिकारी महान् देश सपूत, "पण्डित इन्द्रपाल"	डॉ. ब्रह्मदत्त शर्मा	1
2	ऊना जिला का एक अर्चचित सिद्धपीठ गिड़गिड़ा पौणाहारी	डॉ. वासुदेव प्रशांत	6
3	हिमाचल एक स्वर्ग-जांगला	डॉ. गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'	10
4	सीता-हरण	श्री मोहन राठौर	17
5	कांगड़ा घाटी का डीनू नाग	कु. रजनी बाला ढींगड़ा	19
6	चम्बा के विशेष संदर्भ में, शिखर शैली के मन्दिर	श्री सुरेन्द्र मोहन सेठी	22
7	हिमाचल प्रदेश की जातियों का ऐतिहासिक परिचय	श्री केशव चन्द	25
8	हिमाचल लोक नाट्य स्वरूप एवं परम्परा	श्री शशीकांत शास्त्री	32
9	बुशैहरी लोक गीत एक सांस्कृतिक रहस्य	श्री कृष्ण चन्द कायथ	35
10	नाजो	कु. तारा शर्मा	38
11	सिरमौर के विस्मृत आन्दोलन-II	प्रो. रूप कुमार शर्मा	42
12	पहाड़ों में विवाह संस्कार	डॉ. बलदेव ठाकुर	46
13	हिमाचल का लोक सांस्कृतिक पर्व सैरी का त्यौहार	डॉ. शमी शर्मा	58
14	देव मंढ़ोड़: सिरमौर का टीका	श्री. अमरदेव आंगिरस	62
15	चम्बा जनपद में नाग	श्री हरिराम जसटा	70

सम्पादकीय

हिमाचल प्रदेश के लेखकों और कवियों को प्रोत्साहित करने तथा प्रदेश में उत्कृष्ट साहित्य सृजन की उपलब्धि के उद्देश्य से अकादमी की सामान्य परिषद और अधिशासी निकाय ने "साहित्य पुरस्कार" की योजना स्वीकृत की थी। इस योजना के अन्तर्गत अनेक पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन प्रकाशित करके लेखकों और प्रकाशकों से हिमाचल के लेखकों द्वारा 1-11-1966 से 31-12-1979 तक प्रकाशित पुस्तकें आमंत्रित की गई थी। ये पुरस्कार हिन्दी, संस्कृत, पहाड़ी और उर्दू चार भाषाओं में प्रकाशित पुस्तकों पर दिए जाने निर्णीत थे और प्रत्येक भाषा की विभिन्न विधाओं पर अलग-अलग पुरस्कार दिए जाने का प्रावधान था। प्रकाशित विज्ञापनों के अनुसरण में निर्धारित तिथि तक कुल 111 पुस्तकें प्राप्त हुई थीं। इनमें से उर्दू और संस्कृत में केवल कविताओं की ही पुस्तकें प्राप्त हुई थी। इन भाषाओं में अन्य विधाओं की पुस्तकें प्राप्त नहीं हुई थी। ये सभी पुस्तकें कुल मिला कर तेरह विधाओं में प्राप्त हुई थीं।

निर्णय के अनुसार प्रत्येक विधा की सभी पुस्तकों की तीन-तीन निर्णायकों से समीक्षा करवाई गई थी। यह उल्लेखनीय है कि ये निर्णायक हिमाचल प्रदेश से बाहर क्षेत्र के थे और देश के जानेमाने, लब्धप्रतिष्ठित विद्वान, समीक्षक और विशेषज्ञ थे। इन समीक्षकों द्वारा सभी पुस्तकों के अंक दिए गए थेऔर तीनों समीक्षों के अंकों के आधार पर जो निर्णय तैयार हुआ उसके अनुसार निम्नलिखित पुस्तकें पुरस्कार के लिए श्रेष्ठ पाई गई :—

विधा	प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार
1. हिन्दी कविता	एक टुकड़ा धूप – ले० डॉ० ओमप्रकाश सारस्वत	नियति, इतिहास और जरायु ले०—श्री श्रीनिवास श्रीकान्त
2. हिन्दी कहानी	फासला—ले० श्री केशव	ज्योतिर्मयी – ले० श्री शाँता कुमार/श्रीमती शैलजा
3. हिन्दी नाटक	शहीद प्रकाश – ले० श्री काहन सिंह जमाल	मंजरी महोत्सव —ले० श्री हरिप्रसाद सुमन
4. हिन्दी उपन्यास	बर्फ की राख – ले० श्री रमेश शर्मा	आतंक—ले० श्री सुदर्शन वशिष्ठ
5. हिन्दी इतिहास	कुलूत देश की कहानी— ले० श्री लालचन्द प्रार्थी	हिमाचल इतिहास और परम्परा-ले० डॉ० बी. एल. कपूर

6.	हिन्दी शोध समीक्षा	पहाड़ी चित्रकला—ले० श्री किशोरी लाल वैद्य	हिमाचल के लोकनृत्य ले०—श्री हरिराम जसटा
7.	पहाड़ी लोक साहित्य	देई जुल्फू—ले० श्री मेहरचन्द 'सुमन'	गुग्गा जाहरपीर—ले० श्री देवराज शर्मा
8.	पहाड़ी कविता	रंग बरंगे फुल्ल—ले० श्री नरेन्द्र 'अरुण'	मेरा छैल हिमाचल—ले० श्री भगतराम 'मुसाफिर'
9.	पहाड़ी कहानी/ उपन्यास	रींगदी पीड़—ले० श्री कुलभूषण चन्द्र कायस्थ	महाणू शिखरा रे—ले० श्री रूप शर्मा
10.	पहाड़ी लोक कथाएं	कागज का हंस—ले० डॉ० गौतम व्यथित	कांगड़े दियां लोक कथां— ले० श्री खुशीराम शास्त्री
11.	पहाड़ी निबन्ध	भाव ज्योति—ले० श्री हरिचन्द पराशर	चूंगाते ढोलू—ले० डॉ० आत्मा राम
12.	संस्कृत	तर्जनी—ले० श्री दुर्गादत्त शास्त्री	संस्कृत कोष वाङ्मय— ले० श्री केशव शर्मा
13.	उर्दू	उड़ान—ले० श्री शबाब ललित	खूने-जिगर—ले० श्री आकिल लाहौरी

इन पुस्तकों पर माननीय मुख्य मन्त्री श्री वीर भद्र सिंह जी ने दिनाँक 11 जुलाई 1983 को डाडासीबा, जिला कांगड़ा में एक भव्य समारोह में पुरस्कार दिए। उस दिन प्रदेश के स्वतन्त्रता सेनानी, समाज सेवक, कवि, लेखक और लोक-गायक पहाड़ी गाँधी बाबा काँशी राम का जन्मशताब्दी समारोह भी था। उस अवसर पर समारोह का उदघाटन करते हुए मुख्य मन्त्री महोदय ने कहा :—

"आज बहुत ही खुशी का दिन है कि जहां हम डाडासिबा में पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम का 100वां जन्म दिन मना रहे हैं वहां हमें हमारे प्रदेश के कई प्रमुख और उदीयमान साहित्यकारों और कवियों से मिलने और उनकों सम्मानित करने का भी अवसर प्राप्त हुआ है। । सबसे पहले मुझे आप लोगों का आभार प्रकट करना है कि आपने मेरे डाडासिबा आने पर बड़े प्रेम और गर्मजोशी के साथ स्वागत किया। मेरे मुख्य मन्त्री बनने के बाद यहां आने का पहला मौका है और खुशी इस बात की है कि इस मुबारिक मौके पर यहां आने का अवसर मिला है। पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम सिरफ डाडासिबा के नहीं थे, सिरफ कांगड़ा जिला के नहीं थे, केवल हिमाचल के नहीं थे। वे महान् पुरुष सारे देश के थे। सबको उनपर गर्व है, इस जगह को इस बात का फखर है कि ऐसे देश भक्त का यहाँ जन्म हुआ, जिन्होंने अपनी कुरबानी से अपने जीवन में महान कार्य करके हमारे लिए एक नमूना पेश किया। बाबा कांशीराम के कई रूप हमारे सामने है। वे स्वतन्त्रता सेनानी थे, कबि थे, समाज सुधारक थे और संगीतज्ञ थे। उन्होंने अपनी कुरबानियों के द्वारा देश प्रेम के गीत गाये। लोगों को जंगे आजादी में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया, अंग्रेजी हकूमत के सामने टक्कर ली, जेल गए,

यातनाएं सहीं और अपनी कुरबानी से उन्होंने अपने देश को आजाद कराने में योगदान दिया। आज हमारा देश आज़ाद है और हम आभारी हैं उन देशभक्तों के, बाबा कांशी-राम के, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत माता को समर्पित किया। यदि हम आज आज़ाद है तो उन महान पुरुषों की कुरबानियों की वजह से। हिन्दोस्तान को आज़ाद करने के लिए हज़ारों लोगों ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में कुरबानियां कीं। अपने जीवन का बलिदान दिया, बड़ी-बड़ी यातनायें सहीं, कष्ट झेले और इन लोगों की कुरबानियों की वजह से हिन्दोस्तान आज़ाद हुआ और हम लोग आज़ाद मुल्क के वाशिन्दे कहलाने के काबिल बने। आज खुशी इस बात की है कि जिन महान पुरुषों ने हिन्दोस्तान की खातिर कुरबानियां दीं, आहुति दी, एक रास्ता दिखाया, हम उनके रास्ते पर चलें। उन्होंने देश प्रेम का, अपने मुल्क के प्रति वफादारी का सबक सिखाया। हम उनके सबकों को सीखें और उन द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलकर अपने देश को और भी मज़बूत बनायें। आप जानते हैं कि हमारे जो देश-भक्त हुए हैं, हमारे जो शहीद हुए हैं, हमारे जो स्वतन्त्रता सैनानी हुए हैं उन्होंने तो अपना कर्त्तव्य पूरा किया, उन्होंने अपना फर्ज़ पूरा किया और मुल्क उन्होंने आज़ाद किया है हम उसको मजबूत बनाने, इसकी एकता को बनाये रखने, इसकी अखण्डता बरकरार रखने और इस देश को एक आदर्श देश बनाने के प्रयत्न करें। ऐसा मुल्क बनायें जहां हर आदमी को सामाजिक और आर्थिक न्याय मिलता हो, जहां सबको सुख-शान्ति मिलती हो और ऐसा देश बनायें जो संसार में प्रथम शक्ति के रूप में आगे जाये। आज आज़ादी के 35 वर्ष हो गए हैं, आज भी कुछ समस्यायें हैं। कुछ लोग इस देश को आगे बढ़ने नहीं देते, आज हमें ऐसी ताक्तों से सावधान रहना चाहिए। आज जो भाषा के नाम पर और धर्म के नाम पर, प्रदेश के नाम पर देश के टुकड़े करने की समस्या पैदा हो रही है हमें उससे खबरदार रहना चाहिए। अगर उन लोगों की चालें सफल हो जाती हैं तो पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम जैसे देश-भक्तों की कुरबानियां विफल हो जायेंगी। आज़ादी किस काम की रहेगी। हिन्दोस्तान काश्मीर से कन्याकुमारी तक, पंजाब से नागालैंड तक एक विशाल देश है। वह एक है, वह एक सूत्र में बंधा हुआ है। भले ही इस देश में कई मजहब के लोग रहते हैं, हिन्दू है, सिख है, इसाई है, मुसलमान है। ऐसे ही इसमें कई सूबे हैं, पंजाब है, हरियाणा है, मध्यप्रदेश है, महाराष्ट्र है, मद्रास है आदि। इस देश में अनेक भाषायें बोली जाती हैं। खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा अलग है, परन्तु हम सब हिन्दोस्तानी हैं। हमारे देश की शान इसी में है कि हम सब मिलकर रहें, एक बनकर रहें। हम चाहे किसी धर्म के हों, हम पहले हिन्दोस्तानी हैं। यही हमको महात्मा गांधी ने सिखाया, यही हमें जवाहरलाल नेहरू ने सिखाया और यही बात हमको पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम ने सिखाई। आज हमें ज़रूरत है कि हम इस सबक को याद रखें, इसे दोहरायें ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इस बात को भूल न जायें।

हमें अपने प्रदेश हिमाचल पर भी गर्व है। हम सब पहाड़ी हैं। हमारी संस्कृति एक है, हमारी भाषा एक है, हमारा अतीत एक है, हमारा वर्तमान एक है और हमारा भविष्य

एक हैं, हम सब एक है। हम हिमाचल के किसी भी जिला में रहें हम सब पहाड़ी हैं। हमें विरोध पैदा करने वाली ताकतों से सावधान रहना चाहिए। हम चाहे कहीं भी रहें, लाहुल-स्पीति, मण्डी, कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना में कहीं भी रहें। हम सब पहाड़ के रहने वाले पहाड़ी लोग हैं। हमारी एकता हमेशा कायम रहनी चाहिए। मैं हमेशा कहता हूं कि मुख्यमन्त्री आयेंगे, मुख्यमन्त्री जायेंगे, सरकारें आयेंगी, सरकारें जायेंगी परन्तु हिमाचल प्रदेश की जनता हमेशा अमर रहेगी। हिमाचल प्रदेश की एकता हमेशा अमर रहेगी। हमें इसी भावना के साथ आगे चलना चाहिए। प्रदेश की प्रगति और भलाई हमारा उद्देश्य है, हमें इन कामों को पूर्ति के लिए अपनी जनता, अपने बुद्धिजीवियों, अपने साहित्यकारों, अपने कवियों, अपने सरकारी कर्मचारियों, अपने प्रैस और अखबार वालों, सबका समर्थन चाहिए, सबका सहयोग चाहिए। ऐसा वातावरण चाहिए जिससे सरकारी कानून का पालन विधिवत् हो जाए।"

मुख्यमन्त्री महोदय ने प्रदेश में साहित्यकारों और कलाकारों के प्रोत्साहन की बात की। उन्होंने कहा कि हमारा प्रदेश आदि काल से ऋषि-मुनियों, कवियों, गायकों, लेखकों और कलाकारों का क्षेत्र रहा है। हमें अपने साहित्य और कला की परम्परा को न केवल कायम रखना चाहिए अपितु उसमें वृद्धि और विकास लाना हमारा परम कर्तव्य है। इस सम्बन्ध में मुख्यमन्त्री महोदय ने पुनः कहा —

"अन्त में मैं बड़ा आभारी हूं हमारी हिमाचल कला-संस्कृति और भाषा अकादमी का जिन्होंने इस सभा का आयोजन किया और पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में यह कार्यक्रम मनाया। आपको यह जानकर खुशी होगी कि हिमाचल प्रदेश सरकार ने अपने स्तर के ऊपर जो हमारे साहित्यकार हैं, कलाकार हैं, लेखक हैं, कवि हैं, उनको प्रोत्साहित करने के लिए बहुत से कदम उठाये हैं और उनमें हमने बहुत से इनाम भी घोषित किए हैं। जो हिन्दी में लिखें, पहाड़ी में लिखें, उर्दू में लिखें, कविता लिखें या लेख लिखें, उनको सरकार पुरस्कार देती है और हमने आपके सामने कई साहित्यकारों और कवियों को प्रथम और द्वितीय पुरस्कार दिए ताकि हमारी भाषा का विकास हो सके। इसी तरह हमने पीछे पुरस्कार की घोषणा की थी। हमारे स्वर्गीय मुख्यमन्त्री डॉ. यशवन्त सिंह परमार ने प्रदेश में पहाड़ी के विकास के लिए बहुत बड़ा कार्य किया है और हमने घोषणा की थी कि उनके नाम पर हर वर्ष प्रदेश में पहाड़ी संस्कृति और भाषा या पहाड़ी के गद्य क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट सेवा करने वाले लेखक को दस हजार रुपये का सम्मान-पुरस्कार दिया जाएगा। और इसी तरह से हमने घोषणा की थी कि हम हिन्दी में सर्वोच्च साहित्यिक सेवा करने वाले हिमाचली लेखक को भी प्रति वर्ष दस हजार रूपये का पुरस्कार श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के नाम से देंगे। गुलेरी जी हमारे इसी क्षेत्र के बहुत बड़े हिन्दी साहित्यकार हुए हैं। और आज पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम के जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर मुझे यह घोषणा करते हुए खुशी होती है कि हम पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम की स्मृति में प्रति वर्ष दस हजार रुपये का एक और पहाड़ी भाषा में सम्मान-पुरस्कार देंगे और

वह होगा पहाड़ी कविता के क्षेत्र में। यानि अब पहाड़ी में दो इनाम घोषित किए जाते हैं - दस हज़ार रुपये का गद्य का इनाम स्वर्गीय डॉ. परमार के नाम से और दूसरा दस हज़ार रुपये का कविता के क्षेत्र में इनाम पहाड़ी गाँधी बाबा कांशीराम के नाम से। ये तीन बड़े इनाम हमने प्रदेश में साहित्य के प्रोत्साहन के लिए घोषित किए हैं। इसके इलावा हम चाहते हैं कि हमारे यहां जो और साहित्यकार हैं, कवि हैं, लेखक हैं उनको और भी सुविधाएं प्रदान की जाएं। इसके लिए शिमला में लेखक-गृह स्थापित किया गया है। हम ऐसे लेखक-गृह के लिए स्थायी मकान बनाएंगे, और उसमें साहित्यकारों और कलाकारों को सभी सुविधाएं जुटाई जायेंगी जहां वे सुन्दर और शान्त वातावरण में साहित्य और कला सेवा करें। इसी प्रकार हम ऐसे लेखक गृह हिमाचल प्रदेश के अन्य भागों में भी स्थापित करने का विचार रखते हैं। इसके इलावा हमने निर्णय किया है कि हमारे जो लेखक अपने परिश्रम से पुस्तकें छापते हैं उनके सामने आम तौर पर यह कठिनाई होती है कि जो पुस्तकें छपवाते हैं वे बिकती नहीं है क्योंकि ये लोग व्यापारिक दृष्टि से तो अपनी पुस्तकें छपाते नहीं हैं। वे साहित्य की सेवा के दृष्टिकोण से छपाते हैं। परन्तु वे पुस्तकें बिकती नहीं और उलटा उनके लिए भार बनी रहती हैं। इसलिए हमारी सरकार ने यह निर्णय किया है कि जो भी पुस्तचकें हिमाचली लेखकों की छपेंगी उनमें से जितनी हमारी हिमाचल कला-संस्कृति और भाषा अकादमी सिफारिश करेगी हम उन पुस्तकों का 'बलक परचेज' करेंगे। यानि अब उन किताबों को सरकार हजारों की संख्या में खरीदेगी। उन्हें स्कूलों, कालेजों की लाईब्रेरियों पंचायतों के लिए खरीदेगी। ताकि हमारे लेखकों को प्रोत्साहन मिल सके और प्रदेश में अच्छा साहित्य निकले, ताकि साहित्यकार अच्छे स्तर की रचनाएं और कविताएं लिखकर हमारी प्रेरणा का स्रोत बन सकें। मुझे उमीद है कि इस तरह की जो छोटी घोषणाएं हमने की हैं इनसे हमारे लिखने वाले लेखकों को प्रोत्साहन मिलेगा और उच्चतम कोटि की सामग्री, उच्चतम कोटि का साहित्य हमारे सामने आ पायेगा। इन शब्दों के साथ मैं आप सब का आभार प्रकट करता हूं। मैं डाडासिबा के लोगों को मुबारिकबाद देता हूं कि यहां देश के एक महान सुपुत्र का जन्म हुआ। उन पर आपको तो गर्व है ही, हम सबको और भारतवासियों को भी गर्व है और मुझे उमीद है कि यह क्षेत्र उनके बताए हुए रास्ते पर आगे चल कर देश की एकता, देश की अखण्डता के लिए काम करेगा।"

लेखकों से निवेदन

हिमाचल संस्कृति, भाषा एवम् कला सम्बन्धी विषयों पर सोमसी में प्रकाशनार्थ रचनाएं निम्न पत्ते पर भेजें ।

सम्पादक 'सोमसी'
हिमाचल कला, संस्कृति
और भाषा अकादमी,
क्लिफ एण्ड एस्टेट,
शिमला-171001

हिमाचल के क्रान्तिकारी महान देश सपूत पण्डित इन्द्रपाल

– डॉ० ब्रह्म दत्त शर्मा

भारत की स्वाधीनता का इतिहास सच्चे अर्थों में त्याग और घोर तपस्या का इतिहास है, सतत् संघर्ष एंव बलिदान का इतिहास है। यदि हम इस पावन-पुनीत इतिहास की गहराई में बैठकर इसका विधिवत् एंव सम्यक् दृष्टि से अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि कितने ही देश भक्तों ने अपना सम्पूर्ण जीवन देश की स्वाधीनता के लिएअर्पित कर डाला था और कितने ही नवयुवकों ने भारत मां की दासता की ज़ंजीरों को काटने हेतु हंसते-हसते जेल की काल कोठरियों तथा महाकाल का आलिंगन किया था किन्तु राष्ट्र की गरिमा में तनिक भी आंच न आने दी थी। राष्ट्र के महान सपूतों ने अपने तन मन धन को न्यौछावर कर देश की स्वाधीनता के अमर एवं दिव्य दीप को आलोकित किया था। देश की स्वाधीनता की बलिवेदी पर अनेक महापुरुषों ने अपने जीवन पुष्प अर्पित किए हैं। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, सुभाष चन्द्र बोस तथा सरदार भक्त सिंह ने अपने-अपने रास्तों से स्वतन्त्रता-आन्दोलन में अपना सक्रिय योगदान दिया है।

हिमाचल प्रदेश ने भी अनेक क्रान्तिकारी वीर सपूतों को जन्म दिया है—राम सिंह पठानियां, पण्डित हृदयराम, ऋषि राम लट्ठ, पहाड़ो गाधी बाबा कांशीराम तथा उन्हीं में से एक का नाम है—पण्डित इन्द्रपाल। पण्डित इन्द्रपाल हिमाचल प्रदेश के क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता सेनानियों में अग्रणी थे।

पण्डित इन्द्रपाल का जन्म ५ अप्रैल सन् १९०५ को हमीरपुर जिले की नादौन नगरी में हुआ। आपकी माता का नाम राम देवी तथा पिता का नाम पण्डित हरिराम था। बचपन का नाम मगतराम था। देहरागोपीपुर से उन्होंने मिडिल की परीक्षा स्कॉलरशिप लेकर पास की थी। तदनन्तर बनी-बग्गी तथा चौकी मनियार की पाठशालाओं में कुछ समय तक अध्यापक का कार्य करने के पश्चात् वे किसी को बिना कुछ बताए कहीं खिसक गए। तीन-चार साल तक इधर-उधर घूमने के पश्चात वे लाहौर पहुंचे जहां मास्टर नन्दलाल कातिब के शागिर्द बने और किताबत का काम करने लगे।

सन् १९२५ में सनातन धर्मसभा रावलपिंडी द्वारा प्रकाशित उर्दू साप्ताहिक सुदर्शन-चक्र में कातिब के रूप में काम करना आरम्भ कर दिया। वहीं वह पण्डित रूप चन्द, जो बाद में दूसरे लाहौर षड़यन्त्र केस के एक मुख्य अभियुक्त थे, के निकट सम्पर्क में आए।

पं० रूप चन्द उर्दू सप्ताहिक समाचार-पत्र सुदर्शनचक्र के मैनेजर थे । उन्होंने पं० इन्द्रपाल के सम्बन्ध में इस प्रकार से लिखा है—वह खुशनबीस के तौर पर समाचार-पत्र लिखने हेतु लाहौर आए थे, दुबला-पतला लम्बा लगने वाला गन्दमी रंग का ब्राह्मण अपने हठ का आदमी था। शारीरिक कष्टों पर अपनी नैतिक शक्ति से नियन्त्रण पाने की क्षमता उसमें थी। समय सिद्धान्त तथा कानून-कायदों का पाबन्द-अपनी तरफ से अपने आप पर उसने अनेक पाबन्दियां लगा रखी थीं। वह अपने आप को कड़े अनुशासन के अधीन रखना चाहता था। वह विश्राम (आराम-तलबो) के विरुद्ध था। सर्दियों के दिनों में भी उसे सोने के लिए एक चादर पर्याप्त होती थी। उसका कहना था कि जितनी नींद की उसे आवश्यकता है, वह एक चादर में प्राप्त की जा सकती है। दिन को वह समाचार-पत्र का काम करता, सायंकाल को बाहर तपोवन की ओर चला जाता, जगल में घूमता, थक कर चूर-चूर होकर लौटता और सो जाता। जब नींद खुल जाती तो पढ़ना शुरु कर देता। उसे हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने और इतिहास से शनासा होने की, कभी न मिटने वाली भूख सदैव लगी (वेदार) रहती। बुनियादि तौर पर वह एक सादा, सच्चरित्र और तपस्वी जीवन व्यतीत करने के लिए बने थे। पण्डित इन्द्रपाल का कहना था कि अभाव, कठिनाइयों और पीड़ाओं से जीवन बनता है, सुख सुविधाओं से नहीं। इसीलिए इनसे मनुष्य को दुःखी नहीं होना चाहिए।

पण्डित रूपचन्द जो उनके अन्तरंग साथी थे, ने उनके विषय में आगे लिखा है-मैंने कुछ दिन तक इनका दैनिक कार्यकलाप देखा, फिर समझ गया कि यह एक असाधारण इन्सान है। स्वभाविक तौर पर (फितरतन) एक तपस्वी है जिसके दिल में समाज के लिए, दूसरों के लिए, मनुष्य मात्र के लिए, कुर्बानी करने और कष्ट सहने की भावना (जज़बा) प्रकृति से मिली है। कुछ मास समाचार-पत्र के कार्यालय में रहे फिर वापिस लाहौर आ गए। मालिकों से पण्डित इन्द्रपाल की बनी नहीं। लाहौर आने पर पण्डित इन्द्रपाल ने पण्डित रूप चन्द को भी अपने पास बुला लिया। दोनों वहां से प्रकाशित होने वाले सनातन धर्म प्रतिनिधी सभा के उर्दू दैनिक भीष्म में कार्य करने लगे। वहां समाचार पत्र के कार्यालय में कुछ खुशनबीस लोग सम्पादक की चाटुकारिता कर अधिक धन कमाने का ढ़ंग अपनाए हुए थे। पण्डित जी ने इस चापलूसी और खुशामद को बदलने का ढंग निकाला और प्रत्येक कार्य कर्ता (कारकुन) की सलाहीयत और योग्यता के अनुसार उसका वेतन निश्चित करवाया और इस प्रकार मजदूर के अन्दर उचित वकार और खुद्दारी पैदा करके लोकतान्त्रिक ढंग आरम्भ किए। आपने लाहौर में सारे खुशनबीसों को संगठित किया। भीष्म अखबार के कातिबों की एक यूनियन बनायी जिसमें हर एक को उसकी लिखाई की योग्यता के अनुरूप के प्रतिशत उजरत तय कर दी और खुशामद का ढंग बदल गया। मजदूर संगठन में उनका महत्व बढ़ गया। हर मजदूर को बेदारी का संदेश देना उनका दैनिक कार्यक्रम हो गया।

इसी बीच पण्डित जी कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर दिन व दिन ज्यादा आकर्षित होते चले गए। वह सरदार भगत सिंह द्वारा गठित नौजवान भारत-सभा के जलसों-जलूसों में भी दिलचस्पी लेने लगे। यशपाल, जो बाद में हिन्दी के विख्यात लेखक और साहित्यकार बने, कभी-कभी इनसे मिलने के लिए आते थे। उनका सम्बन्ध हिन्दुस्तान

सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी से था। यशपाल ने इन्द्रपाल को भी स्वतन्त्रता के लिए क्रांति के संघर्ष में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित किया। आए दिन निहत्थे सत्याग्रहियों पर पुलिस लाठी चार्ज, मार-पीट और दूसरी यातनाओं से प्रभावित हो पण्डित जी ने मंजिलें आजादी नामक एक किताब और कुछ छोटी पुस्तिकाएं लिखकर जनता में वितरित की। यशपाल ने पण्डित इन्द्रपाल जी को क्रान्तिकारी (इन्कलाब पसन्द) पार्टी की ओर खींच लिया। भारत के वायसराय लार्ड इर्विन की गाड़ी को बम से उड़ाने की साजिश में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन के निकट साधु बन कर रहे। दिन को प्रभु का नाम लेते और भक्ति भावना से ओतप्रोत भजन सुनाते और रात को जमीन के नीचे बिजली के तार दबाते थे। जिससे निश्चत समय पर गाड़ी के नीचे धमाका करना था।

वायसराय इर्विन की गाड़ी को बम से उड़ाने की योजना में पण्डित इन्द्रपाल ने सक्रिय योगदान दिया। २३-१२-१९२९ को प्रातः साढ़े सात बजे दिल्ली के निकट पुराने किले के साथ वाले जंगल में यशपाल, इन्द्रपाल, भगवती चरण और लेखराम जाट ने गाड़ी को बम से उड़ाने का एक्शन किया, बम फटा मगर, वायसराय अपने निश्चित डिब्बे के बजाए किसी और डिब्बे में सवार थे, इसलिए बच गए। देहली काण्ड के पश्चात् क्रान्तिदल के केन्द्रीय नेताओं में पण्डित इन्द्रपाल का महत्व बढ़ गया। आगामी योजना भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त को जेल से छुड़ाने की बनायी गयी। जिसकी रूपरेखा तैयार करने के लिए आए दिन पन्डित जी के निवास स्थान पर गुप्त-मन्त्रणा होने लगी जिसमें कई बार चन्द्र शेखर भी सम्मिलित हुए। पर इस योजना को २८ मई, १९३० को भगवती चरण की बम-परीक्षण में हुई दुखद् मृत्यु तथा बहाबलपुर रोड़ पर एक मकान की अलमारी में पड़े बमों के अचानक विस्फोट हो जाने के कारण बीच में ही छोड़ सभी क्रान्तिकारी नेता लाहौर से चले गए।

अब पण्डित जी ने पंजाब के क्रांतिकारी आन्दोलन को तेज करने, पुलिस के अत्याचारों का का बदला लेने और उन्हें सबक सिखाने की एक नई योजना तैयार की। देश के लिए कुछ कर गुजरने की भावना वाले कतिपय नवयुवकों—सरदार गुलाब सिंह, धर्मपाल, रूपचन्द, कुन्दन लाल, हंसराज वायरलैस प्रभृति को साथ ले आतिशी चक्र नमक संगठन का गठन कर लिया। इस संगठन द्वारा लायलपुर, गुजरांवाला, शेखपुरा, रावल पिंडी, अमृतसर और लाहौर में १९ जून, १९३६ को प्रातः ६ बजे बम विस्फोट किए गए। इन्द्रपाल स्वयं तीन जगहों पर बम विस्फोटों का प्रबन्ध करने गए थे। पंजाब में इस सम्बन्ध में लगभग चालीस व्यक्ति गिरफ्तार किए। पं. इन्द्रपाल २६ अगस्त, १९३६ को पकड़े गए।

दूसरे मुकद्दमा साजिश लाहौर के अन्दर बन्दी बनाए जाने के बाद किस प्रकार पुलिस को चकमा देकर वे सरकारी गवाह बन गए और न्यायालय में अपने कथन (बयान) से मुकर हो गए ताकि मुकद्दमा साजिश के अन्य अपराधी बच जाएं—यह क्रांतिकारियों के इतिहास में ऐतिहासिक कारनामा था। पण्डित इन्द्रपाल के बयान

के कारण सरदार गुलाब सिंह और उनके भाई अमरीक सिंह की अपील में फांसी की सजा खत्म हो गयी, पांच साथियों को उम्र कैद और बाकी को दो से सात साल की सजा दी गई थी, भी समाप्त हो गयी। इसका श्रेय पं० इन्द्रपाल को ही था।

प० इन्द्र पाल की वादा मुआफी तोड़कर उनपर वही मुकद्दमा चलाया गया जिसको उन्होंने स्वयं ट्रिब्यूनल की अदालत में दोषी माना था। परिणाम स्वरूप इन्द्रपाल जी को ज़ेर दफा ३०२/१०९ फांसी की सजा और दूसरी अलग-अलग दफात के अन्तर्गत आजीवन कारावास या काले पानी की सजा और ४ (वीं) भारतीय दण्ड संहिता एक्ट ६ आफ १९०८ के अधीन २० साल कैद की सजा मिली। यह सब सजाएं इकट्ठी चली।

पुलिस ने इनसे जबरदस्त बदला लिया। पांच साल तक उन्हें जेल में अकेला रखा और किसी आदमी का चेहरा तक उन्हें देखने नहीं दिया। इस तन्हाई और सख्ती के कारण पण्डित जी का स्वास्थ्य बहुत ज्यादा खराब हो गया। जब हाई कोर्ट में उनकी अपील में फांसी की सजा टूटी तो वे दूसरे क्रान्तिकारियों कैदियों के साथ आ मिले। उस समय उनका शरीर इतना दुर्बल और क्षीण हो चुका था कि पहचाने नहीं जाते थे। उनकी कैदी हिस्ट्री शीट पर लिखा था—अत्यन्त खतरनाक कैदी। पुलिस की राय थी कि प. इन्द्रपाल जब तक जीवित हैं उन्हें जेल के अन्दर ही रखा जाए। २० साल की सजा काट चुकने पर रिहा करने की बजाए उनका केस सी. आई डी. को भेजा जाए, परन्तु पुलिस और जेल के दुर्व्यवहार के अतिरिक्त माान्टगुमरी जेल में राजनैतिक कैदियों की हालत सुधारने के लिए की गयी भूख हड़ताल में पं. जी ने दिल व जान से भाग लिया। नाक व मुंह के रास्ते नालियों द्वारा भोजन लेना भी बन्द कर दिया। उनका शरीर हड्डियों का ढांचा बन गया। इसी कमजोरी के कारण उनके दिमाग की नस प्रभावित हो गयी और वे चलते-चलते गिर कर बेहोश हो गये। उनका आधा शरीर बेकार हो गया। पण्डित इन्द्रपाल जी को अधरंग हो गया था। जेल के अन्दर डाक्टरी बोर्ड बैठा, उसकी राय थी कि पं. जी अब अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकते। इस आशय की रिपोर्ट को दृष्टिगत रखते हुए भी अंग्रेज़ी सरकार उन्हें रिहा करने के लिए तैयार नहीं हुई।

पण्डित इन्द्रपाल जी की धर्म पत्नी श्रीमति जगदीश्वरी देवी ने महात्मा गांधी जी को पत्र लिख कर उनसे प्रार्थना की कि वे पंजाब सरकार पर दबाव डालकर उनके पति को जीवित जेल से बाहर निकालने में सहायता करें। महात्मा गांधी ने उसको लिखा कि वह इस कार्य के लिए पजाब सरकार को लिख रहे हैं। इस प्रकार १९३८ में पण्डित इन्द्रपाल जीवन और मृत्यु के बीच लटके हुए स्ट्रेचर पर अर्ध बेहोशी में लेटे हुए जेल से रिहा कर दिए गए। तिब्बिया कालेज लाहौर के प्रिंसीपल हकीम मुहम्मद हसन कर्शी ने उनका इलाज शुरू किया, थोड़ा ठीक होने पर पण्डित जी ने उर्दू दैनिक वीर भारत के सम्पादकीय मण्डल में काम शुरू कर दिया।

वर्ष १९४७ में भारत-विभाजन के समय अपनी जन्म स्थली नादौन आ गये जहाँ सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए एक पुस्तक लिखी । कुछ समय पश्चात् दिल्ली चले गए । ३० जनवरी, १९४८ को सायं जब उन्होंने राष्ट्र पिता को गोली मारे जाने का दुःखदसमाचार सुना तो बेहोश हो गए, पक्षाघात का यह अन्तिम आक्रमण था जो उनके लिए घातक सिद्ध हुआ। इर्विन अपस्ताल दिल्ली में १३ अप्रैल १९४८ को पण्डित इन्द्रपाल जी सदा की नींद सो गए। विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध क्रान्ति का उद्घोष करने वाले त्याग, तपस्या और अद्भुत साहस के प्रतीक पण्डित इन्द्रपाल का नाम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। पण्डित इन्द्रपाल जी की कुर्बानी बेमिसाल थी अंग्रेजी सरकार पण्डित जी को फांसी न लगा सकी मगर गरीबी, खुद्दारी और बीमारी ने अनेक बहुमूल्य जीवन का अन्त कर दिया और वे शहीदों की पंक्ति में शामिल हो गए।

पण्डित इन्द्रपाल जी की मृत्यु पर उनके अन्तरंग साथी पण्डित रूप चन्द जी ने अपनी श्रद्धांजलि इस प्रकार से दी है। यह उर्दू भाषा में है जिसका हिन्दी रूपान्तरण इस प्रकार से किया जा रहा है।

तुम कैद में तो जैसे आज़ाद चहचहाए।
आज़ाद होके कैदी की तरह दिन बिताए।
हिम्मत लग्न तुम्हारी थी देखने की चीजें।
ऐसे छुपे हो लेकिन कुछ भी नज़र न आए।
मंजिल पे टोलियां हैं चलती मुसाफिरों की।
और चल रहे हैं आगे उनके तावील साए।
सैलाब चाहता हूँ, तूफान चाहता हूँ।
जो मेरे दिल पे छाए, अफसोस को हटाए।
गुरबत थी कैसी गुरबत, मेहनत थी कैसी मेहनत।
देखी है तुमने जैसी किस्मत न वह दिखाए।
हाथों में काम रहना, लातों का जाम रहना।
जुर्रत का आम रहना, हम देखते ही आए।
दुनिया से एक फूटी कौड़ी मदद की ली हो।
मानेगे हम नहीं गर कोई कसम भी खाए।
खुद्दार तुम थे कितने और मुश्किलों के आदि।
रोटी के अपने पैसे मरने तलक कमाए।
जज़बा था जो तुम्हारे दिल पे वतन की खातिर।

क्रमशः

ऊना ज़िला का एक अचर्चित सिद्ध-पीठ गिड़गिड़ा पौणा हारी

– डॉ० वासुदेव प्रशांत

हिमाचल प्रदेश देवभूमि के रूप में सारे भारत में प्रसिद्ध है। यहां प्रायः प्रत्येक गांव में कोई-न-कोई ठाकुर द्वारा, सती या सिद्ध पीठिका अवश्य मिलेगी। गांव के लोग देव पूजन या 'सुखना-मानना' के लिए इन स्थानों पर प्रतिदिन या किसी विशेष अवसर पर इकट्ठे होते रहते हैं। ऊना जिला में भी अनेक देवस्थल एंव सिद्ध-पीठ पाये जाते हैं जो यहां के लोगों की धार्मिक मान्यताओं एंव विश्वासों को उजागर करते हैं। इन में बाबा रूद्र का डेरा योमी पंगा आदि समूचे प्रदेश में प्रसिद्ध हैं किन्तु इनके इलावा भी ऐसे कई सिद्ध-पीठ एंव धार्मिक स्थल हैं जिनकी मानता तो काफी है पर वे बहुत अधिक चर्चित नहीं हो पाये हैं। ऐसे ही सिद्ध-पीठो में से एक है गिड़गिड़ा पौणा हारी जिस का विवरण इस लेख में दिया जा रहा है।

स्थिति:—यह सिद्ध-पीठ ऊना जिला के 'बीत' इलाके में स्थित है। पूबोवाल नामक गांव के पास से बहने वाली 'घर दला' खड्ड के किनारे एक ऊंची पहाड़ी पर इस पीठ का स्थान बना हुआ है। यह आबादी से कुछ दूर और वियाबान जंगल में स्थित है और इस का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मोहक है। प्रातः और सांय श्रद्धालु लोग इस स्थान पर आकर सिद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं और प्रकृति की अनुपम छटा और हरितिमा का अवलोकन कर अलोकिक आनन्द भी प्राप्त करते हैं। पक्षियों का मधुर कलरव और वन्य जन्तुओं की विचित्र एवं कर्णप्रिय ध्वनियां इस आनन्द को द्विगुणित कर देती हैं।

यह स्थान ऊना से पैदल तो सात-आठ किलोमीटर के लगभग होगा। किन्तु बस से पन्द्रह-अठारह किलोमीटर पड़ता है। क्योंकि बस घूम कर कई गांवों में होकर आती है। ऊना-जेजों सड़क पर स्थित 'ठाकरां' नामक गांव से इस पीठ तक अब एक कच्ची सड़क भी बन गई है जिस से जीप, कार आदि आसानी से आ जा सकते हैं। शीघ्र ही यह सड़क पक्की होने वाली है जिस से लोगों को वहां पहुंचने में काफी सुविधा हो जायेगी।

स्थापना:—इस सिद्ध-पीठ की स्थापना के सम्बन्ध में कोई विशेष समय तो निश्चित नहीं है, हां यहां के लोगों के बीच अनेक ऐसी लोक-कथाएं और किंवदन्तियां अवश्य प्रचलित हैं जिन से इस की स्थापना के बारे में कुछ सामान्य जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

एक किवदन्ती के अनुसार बहुत समय पहले इस इलाके में गर्मियों के दिनों में पानी की बहुत कमी हो जाती थी। कुंयें तालाब आदि बिल्कुल सूख जाते थे। लोगों को पीने के लिए पानी लाने और अपने पशुओं को पानी पिलाने के लिए स्वां (ऊना के पास से बहने वाली बरसाती नदी) जाना पड़ता था। पूबोवाल गांव के लोग भी पानी के लिए इकट्ठे होकर स्वां जाते थे जो वहां से छः मील के करीब पड़ता है। इस तरह उन दिनों लोगों को गर्मियों के दिनों में काफी कष्ट उठाना पड़ता था। अब तो स्थिति बिल्कुल बदल गई है गांव में नल और बिजली आने से लोगों को किसी भी प्रकार की असुविधा का सामना नहीं करना पड़ता, किन्तु वे दिन तो नारकीय जीवन के दिन थे।

एक दिन रोज़ की तरह जाटों का एक बड़ा झुण्ड अपने डंगर-पशु ले कर स्वां जा रहा था। सब लोग तो काफी आगे निकल गये, किन्तु एक जाट के पशु रास्ते में बिदक गये जिन्हें सम्भालने में उसे काफी दिक्कत हुई और वह बाकि लोगों से पीछे रह गया। जब वह घाटी से नीचे खड्ड की ओर उतर रहा था तो उसे एक बाल-साधु दिखाई दिया जिस की आयु कोई छः-आठ वर्ष होगी। उस के बाल बिल्कुल सुनहरी थे और चेहरे से दिव्य तेज टपक रहा था। वह साधु एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। जाट जब उधर से निकला तो उस ने उस से आदेशात्मक स्वर में कहा कि मेरी टांगें दबा कर जाओ उस साधु के मुख पर दिव्य आलोक देख कर वह इन्कार न कर सका और उस ने बड़ी श्रद्धा से उस के पैर दबाये। काफी देर हो जाने पर उस ने साधु से विनम्र आज्ञा मांगी और कहा—महाराज मेरे पशु प्यासे रह जाएंगे। स्वां तक जाना है जो यहां से काफी दूर है। उस की सेवा भाव से प्रसन्न होकर साधु महाराज ने उसे पास से एक बड़ा पत्थर उठाने को कहा। जाट ने जब पत्थर उठाया तो यह देख कर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि पानी का एक बड़ा स्रोत वहां से बह निकला है। साधु महाराज को आज्ञा से उस ने अपने पशुओं को पानी पिलाया और अपना घड़ा भी भर लिया और फिर पत्थर को वैसे ही टिका दिया। साधु ने उसे इस घटना के बारे में किसी से न कहने का भी आदेश दिया और कहा कि यदि वह उस की आज्ञा का उल्लंघन करेगा तो उस का बहुत बड़ा अनिष्ट होगा क्योंकि वह जाट धर्मात्मा था अतः केवल वह ही वहां से पानी भर सकता था। बाकि लोग पुण्य के काम नहीं करते थे। उन्हें यह सुविधा नहीं मिल सकती थी।

साधु के कथनानुसार जाट चुपके से रोज़-रोज़ वहां से पानी भी भर कर ले जाता, किन्तु यह रहस्य बहुत देर छुपा न रह सका। बाकि लोगों को सन्देह हो गया और उन्होंने जाट से इस भेद को जानना चाहा। पहले तो उस जाट ने कुछ आना-कानी की, पर अन्त में उसे बताने के लिए मजबूर होना पड़ा। इस के बाद वह जाट ज्वर ग्रस्त रहने लगा और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। बाद में उस स्त्रोत के स्थान पर पक्की बवालियां बना दी गई जो आज भी वहां पर स्थित हैं।

जिस घाटी पर उपर्युक्त घटना घटी थी उस के बिल्कुल सामने खड्ड के पार की पहाड़ी पर एक गुफा है। उस बालसाधु के प्रकट होने की घटना के बाद लोगों में विश्वास घर कर गया कि वह उसी गुफा में रहता है और वहां से अक्सर गिड़-गिड़ की ध्वनि आती रहती थी। अतः उस स्थान और साधु का नाम गिड़गिड़ा पड़ गया। ऐसा भी माना जाने लगा कि वह गुफा बहुत दूर तक जा कर आगे बाबा वनाखंडी के स्थान पर जा निकलती है जो होशियारपुर-ऊना सड़क पर स्थित। साधु के बालस्वरुप होने के कारण बहुत लोग उसे बाबा बालकनाथ का ही रूप मानते हैं। इसीलिए इसे गिड़गिड़ा पौणाहारी (अर्थात पवनहारी) कहा जाता है।

पूबोवाल गांव के बहुत से बजुर्गों से जब मैंने गिड़गिड़ा पौणाहारी का इतिहास या अन्य विवरण प्राप्त करने की कोशिश की तो उन्होंने मुझे कई चमत्कारी घटनायें सुनाईं। अस्सी वर्ष के एक वृद्ध लक्खा सिंह ने मुझे बताया कि एक बार उसे वन में बाबा जी के दर्शन हुये थे। एक दिन वह जंगल में लकड़ियाँ काट रहा था तो अचानक एक छोटा-सा साधु प्रकट हुआ जिसके बाल सुनहरी थे। उस के दिव्य रुप से आकृष्ट हो उस के मन में इच्छा हुई कि उस के चरण छू लें। किन्तु उसके ऐसा करने से पहले ही साधु लोप हो गया। कई और लोगों ने भी मुझे बताया कि उन्हें भी बाबा के दर्शन हुये थे। अब इस प्रकार की घटना को कोई दृष्टिभ्रम भी कह सकता है और कोई उसे सच भी मान लेगा यह तो व्यक्तिगत विश्वास की बात है। इस में तर्क आदि के लिए कोई स्थान नहीं जैसा कि किसी भी धार्मिक मान्यता में प्रायः नहीं होता।

'मानता' (मान्यता)—: कहते हैं कि बाबा जी लोगों को प्रायः किसी न किसी रुप में दर्शन देते रहते थे। अतः इस स्थान की 'मानता' और प्रसिद्धि दिन-ब-दिन बढ़ती गई। बाबा के चमत्कारों की अनेक कथायें भी लोगों में प्रचलित होने लगी। ऐसी ही एक घटना अब लोग सुनाते हैं। एक बार कुछ लोगों ने एक मरे हुये ऊंट की खाल उस स्थान के निकट उधेड़ दी और इस तरह से वहां की पवित्रता भंग की। इस पर बाबा का इतना प्रकोप फैला कि उस वर्ष अनेक बच्चों की आकास्मिक मृत्यु हो गई।

आज बाबा गिड़गिडा पौणाहारी की शक्ति, महत्ता और प्रताप दूर-दूर तक फैल गये हैं। असंख्य लोग विविध इच्छाओं की पूर्ति के लिए बाबा जी की सूखना करते हैं और उसके पूरा होने पर गुफा के आगे रुपये-पैसे और खांड के पताशे चढ़ाते है।

स्थल का वर्तमान स्वरुप:—परम्परा से यह बात प्रसिद्ध है कि पहले-पहल उस स्थान पर कोई व्यक्ति रात नहीं काट सकता था। क्योंकि बाबा किसी भी व्यक्ति को ऐसा पुण्यात्मा नहीं मानता था जो उस स्थान पर आकर रह सके। यदि कोई व्यक्ति ऐसा कर भी लेता था तो बाबा रात को उसे चिमटों से मारता था। इस लिए लोग दिन में वहां आते थे और अपनी श्रद्धानुसार चढ़ावा आदि चढ़ा कर शाम को लौट जाते थे। आखिर बाबा राम सिंह नाम के तपस्या सन्त ने वहां रहने का निश्चय किया। शुरू-शुरू में बाबा रोज़ उसे चिमटों से पीटते थे, परन्तु बाद में उसकी निष्टा और

श्रद्धा से प्रभावित हो कर उस के प्रति दयावान हो गये। इस तरह बड़े धैर्य से बाबा राम सिंह ने वहां 18 वर्ष तक तपस्या की। उन के समा जाने के बाद सन्त खुशी राम 36 वर्ष से यहां सेवारत हैं। बाबा राम सिंह के समय से ही गिड़गिड़ा की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी। उस के बाद तो यह स्थान दिन ब दिन खूब विकसित होने लगा। सन्त खुशी राम भी बड़ी श्रद्धाभक्ति से यहां रहते हैं और इलाके के लोग उन की बहुत मानता करते हैं। भक्त लोग बड़े उदार मन से यहां चढ़ावा चढ़ाते रहते हैं जो इस स्थान के विकास पर खर्च किया जाता है।

विशेषता:—इस सिद्ध-पीठ की एक विशेषता यह है कि यद्यपि मानता तो मूलरूप में गिड़-गिड़ा पौणा हारी की ही है किन्तु अब इसी स्थान पर एक बहुत बड़ा गुरूद्वारा बना दिया गया है। संगतों के रहने के लिए एक सराए भी बन गई है और मुफ्त लंगर भी लगता है। गुरूद्वारे के एक कक्ष में बाबा राम सिंह की संगमरमर की प्रतिमा स्थापित कर दी गई है और उस के सामने के एक बड़े कमरे में गुरूग्रन्थसाहिब की हाज़िरी है। इसके इलावा भी दो-तीन अन्य छोटे-छोटे कमरों में गुरूग्रन्थसाहिब स्थापित है जहां दिन भर उस का पाठ होता रहता है।

मन्दिर और गुरुद्वारे की चढ़त से गिड़गिड़ा पौणाहारी की गुफा का पुनर्निर्माण भी बड़े सुन्दर ढ़ंग से कर दिया गया है। उस के आगे एक पक्का आंगन बना दिया गया है जहां बैठ कर श्रद्धालु लोग बाबा के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं। गुफा से थोड़ा ऊपर को बाबा की समाधि बनी है जहां बाबा की लकड़ी की खड़ाऊं का एक जोड़ा पड़ा रहता है।

बाबा जी की मानता यद्यपि सारे साल होती है और लोग अपनी सुखना पूरी होने पर 'चाला' भी देते हैं, किन्तु कुछ खास दिनों में वहां अच्छा-खासा मेला सा लगता है जो अधिकतर गुरूद्वारे के कारण होता है। हर सप्ताह रविवार और बुधवार को काफी बड़ी संख्या में संगत यहां आती है। महीने की हर सक्रांति को लोग दूर-दूर से यहां आते हैं। इन के इलावा दीवाली आदि पर्वों पर तथा बाबा राम सिंह के विशेष दिन पर यहां पर बड़ा भारी मेला लगता है।

इस तरह से बाबा गिड़गिड़ा के स्थान पर हिन्दू और सिख समान भाव से एकत्रित होते हैं और बाबा जी की गुफा और गुरूग्रन्थसाहिब के आगे अपना मस्तक झुकाते हैं। यह स्थान इस इलाके के लोगों की उदार मनोंवृत्ति का परिचायक है।

राजकीय महाविद्यालय, धर्मशाला

हिमाचल एक स्वर्ग–जांगला

– डॉ० गङ्गादत्त शास्त्री 'विनोद'

पर्वतराज हिमालय की महिमा न केवल आधुनिक अपितु प्राचीन कवियों और लेखकों ने मुक्त कण्ठ से गाई हैं। महाकवि कालिदास विशेष कर इस पर मुग्ध दिखाई देते हैं। पर्वत राज हिमालय भारत का गौरवान्वित मस्तक है तथा भारत का रजत मुकुट धारी प्रहरी भी है।

लगभग ढाई हजार वर्ग मीलों तक फैले इस गिरिराज के आञ्चल में प्रकृति की स्वर्गीय छटा युक्त अनेक सुरम्य स्थलियों के अतिरिक्त न मालूम कितनी आलौकिक चमत्कारी उपलब्धियाँ छिपी पड़ी हैं। जड़ी-बूटियाँ, पेड़-पौधे जलप्रपात, नदियां हरे-भरे वन, फूल, फल, हीरे, जवाहरात तथा अनेक धातु आदि इसके गर्भ में असंख्य रुप में विद्यमान हैं। इसी कारण हिमालय की अपूर्व निधियों का परिगणन करना अत्यन्त कठिन है। यहाँ सर्वत्र रमणीय और स्वर्गोपम स्थलों का जाल बिछा है। यह अपूर्व सम्पत्ति भगवान के द्वारा भारत भूमि को ही दी गई है। जहां-जहां इसकी गहराईयों में उतरें वहां-वहां ही एक एक बढ़ कर सुन्दर स्थानों के दर्शन होंगे।

इसी सन्दर्भ में शिमला जिले की रोहड़ू तहसील के अन्तर्गत एक सुरम्य और भूस्वर्ग का रूप लेकर जांगला स्थान विराजमान है, जिसे भारत का स्विटजरलैंड कहा जा सकता है।

रोहड़ू नगर के लगभग १२ किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह स्थान सघन पर्वत माला और वनों के भीतर वसा हुआ है। नीचे की ढलान इतना चौड़ा मैदान बना हुआ है, जिस में सीढ़ियों के आकार के हजारों खेत शस्य-श्यामल होकर पूरे वर्ष तक लहराते रहते हैं। खेतों के किनारे से गुजरती हुई मथरेड़ नदी कल-कल शब्द करती हुई वर्फीलि और चाँदी के घोल जैसे निर्मल पानी को बहाती है। दूर-दराज के इस पर्वत अंचल की छाया में बसे जांगला नगर में सुनसान के साथ शहरी घुटन से हीन अपूर्व शान्ति और चिन्ता हीन जीवन लहरा रहा है।

आस पास के पहाड़ों के गर्भ में छोटे-छोटे गांव दूर-दूर से दिखाई पड़ते है। इन्हें देख कर ऐसा लगता है कि ये पहाड़ पर कैसे टिके हुए हैं नीचे नहीं गिर जाते है किन्तु जब इनके भीतर जाकर देखा जाये तो वहां गलियां भी है, मैदान भी है और चलने फिरने

को काफी स्थान तथा मार्ग है। मकान सुदृढ़ पत्थरों की दीवारों पर टिके होते हैं जिन पर पत्थर की स्लेटें छत्तों के रुप में जड़ी हुई हैं। प्रत्येक मकान सुदृढ़ और शानदार होता है। यहां के निवासियों के लिये पहाड़ों की चोटियों से उतार चढ़ाव एक मनोविनोदक दैनिक परिचर्या जैसी दिखाई देती है। नीचे बहती हुई मथरेड़ नदो की गंभीर गर्जन और तटीय बर्फीली हवा का बहना प्रकृति की अद्‌भुत देन है। गर्मी के दिनों में अन्य शीत स्थलों की अपेक्षा यहां ठण्डक ही रहती है। यहाँ तक कि जून, जुलाई की भीषण गर्मी के दिनों में भी ठण्डी हवा के प्रवल झोंकों से कभी कभी कठिनाई महसूस होने लगती है। तेज हवा बाहरों मास बहती रहती हैं। हाँ वर्षा और कभी-कभी हिमपात का आतंक यहां के जीवन को अस्त-व्यस्त भी कर देता है। इन दिनों चारों दिशाओं की पर्वत श्रृंखलाओं से बादल उमड़ते रहते हैं और धूएं के समान चोटियों पर व्यापत होकर बरसने लगते हैं। एक बार यह क्रम शुरू हुआ तो महीनों तक ऐसा ही चलेगा। झाड़ियों से ढके खेतों के ऊवड़-खावड़ मार्गों के किनारे-किनारे किसानों ने खेत सींचने के लिए छोटी-छोटी नहरें निकाली होती हैं जिनके किनारे भिन्न-भिन्न वनस्पतियों की झाड़ियों से सदा हरित श्यामल बने रहते हैं। इन के भीतर रंग-बिरगे फूल भी सिर उठा कर झूमते रहते हैं। आस-पास के घने जंगलों में कई प्रकार के पेड़ भरे पड़े हैं जैसे देवदार, कॉयल, मौरू, बान, काथी आदि इसो प्रकार चारों ओर हरी-भरी झाड़ियां छाई रहती हैं, जिन में प्रसिद्ध भेखल, कुईन, कुवीशी, कश्मोल, गंगारा आदि हैं। इन में कुईन में फूल गुलाब जैसे सुन्दर और सुगन्धित हैं। सुगन्धित और आकर्षक पुष्पों के पेड़ों में बरास तथा तिलोन यहां प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार यहां के अन्य फूल भी अपने यौवन की अंगड़ाईयां लेते हुए दिखाई देंगे, जिन्हें देख कर फूलों की घाटी याद आ जाती है। फिर मन कह उठना है—क्या यह भी फूलों की घाटी नहीं? काश? यदि इस ओर भी पर्यटकों का रूख होता तो यही फूलों की प्रधान घाटी मानी जाती। अब इतना अवश्य है कि इस ने जन-मानस से अपने को छिपा कर इस स्वर्गीय सौंदर्य को अछूता रखा हुआ है। "अन भ्रतं पुष्पं किसलयम लून कर रूहै"। कालिदास की यह उक्ति भी इसी समय याद आने लगती है।

पहाड़ों की छाती पर तथा नीचे के खेतों में सर्वत्र सेबों के लम्बे-लम्बे उद्यान झूमते हुए दिखाई देंगे। यहां पर मौसम में जितना सेब पैदा होता है उतना हिमाचल के अन्य भागों में शायद ही होता हो। इसके अतिरिक्त नासपात्ती, आड़, खुमानी, चुल्लू जैसे फलों की भी इस घाटी में अधिकता है।

खेती या व्यवसाय

यहां की जनता का अधिकतर व्यवसाय खेती ही है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि पर्वतों की ढलानों में सीढ़ियों जैसे खेतों की असंख्य पंक्तियां दूर से ही दिखाई देने लगती है। इसके अतिरिक्त पहाड़ों के ऊंचे स्थलों पर भी यद्यपि खेत हैं। सब मिला कर यह परिमाण है यहां की भूमि-सम्पदा अत्यधिक है। जितनी मात्रा में भूमि है उससे

कम मात्रा में यहां की आबादी होने के कारण कोई भी घर ज़मीन के बिना नहीं बचा है। ज़मीन भी इतनी उपजाऊ है कि सोना उगलती है। फिर यहां के लोग खेती को ही अपना मुख्य व्यवसाय क्यों न मानें बात भी ऐसी ही है। यहां का ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ेगा जो खेती न करता हो। भले ही वह टीचर है, डाक्टर है, या अन्य सरकारी पद पर है व्यापारी है या दुकानदार, बढ़ई है या लुहार अथवा मज़दूर सब समय पर खेतों में कार्य कर ही लेते हैं। शेष व्यवसाय उनके लिए गौण हैं। इससे एक कठिनाई अवश्य आ जाती है। जब कभी कोई भी निर्माणकार्य करना हो बढ़ई मजदूर, लुहार आदि उपलब्ध नहीं हो पाते। आएंगे भी तो दो-तीनदिन काम करके चले जाएंगे। मकान बनाना हो या फर्नीचर सब कार्य कछुए की गति से चल कर वर्षों में ही समाप्त हो पाएंगे। दुकान दार भी खेती में अधिक समय देने के कारण दुकान पर विशेष समय पर ही मिल सकेंगे। कहने का अभिप्राय यह कि खेती यहां का सब के लिए मुख्य धन्धा है। यहां वर्षा में दो फसलें रबि और खरीफ पैदा की जाती है। फसलों में धान, गेहूं, जौं, मक्की, कोदा, चलाई, चिणी, ओगल, फाफा, चावल ये सब पैदा किए जाते हैं। दालों में माष, कुल्थ, कलाय, मटर आदि यहां की मुख्य उपजहै। किन्तु सब्जियां लगाने का यहां कम प्रचार है। खेती से ही सम्बन्धित यहां की दो उपजें सेब तथा आलू पर्याप्त लाभकारी हैं। जिन के कारण यहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति पर्याप्त सन्तोष जनक हो चली है। दूसरे शब्दों में यह स्थान सब प्रकार से आर्थिक दिशा में स्वावलम्बी तथा सुखी है। इसी कारण यहां के युवक पढ़ने और नौकरी करने को कम महत्व देते हैं क्योंकि बिना पढ़े भी वे पढ़े लिखों से अधिक कमा लेते हैं। सरकार की ओर से निर्माण कार्य सदा चले ही रहते हैं। उनमें भी उन्हें काम काज मिल जाता है। यहां खेती और मजदूरी को स्तरहीन नहीं समझा जाता। पढ़े लिखे और निरक्षर सब एक जैसे माने जाते हैं।

जांगला समुद्री-धरातल से 6000 फीट की ऊंचाई पर स्थित है। इस छोटे से गाँव में लगभग 150 घर आस-पास बसे हुए हैं जो साथ के दो तीन गांव मिलाकर इतनी संख्या तक पहुंचते हैं। बाजार कोई नहीं है। इक्की-दुक्की दुकाने मिलेंगी जिनमें करियाना, बजाजी तथा अन्य जीवन की आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हो सकती हैं। तीन-चार चाय तथा भोजन को दुकानें भी हैं। एक संस्कृत कालेज, एक राजकीय हाई स्कूल तथा एक प्राईमरी स्कूल भी चल रहा है। डिस्पैंसरी तथा उप पत्रालय (Sub Post Office) भी हैं। संस्कृत कालेज हिमाचल सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त तथा हिमाचल विश्व विद्यालय से सम्बन्ध है जिस में प्राज्ञ, विशारद तथा शास्त्री परिक्षाओं के अध्यापन का प्रबन्ध है। पुस्तकालय, छात्रावास तथा अन्य अपेक्षित सुविधाएं भी छात्रों को प्राप्त हैं। भवन कालेज का अपना है। ऐसे दूर दराज और सघन पर्वतमाला के बीच जहां शहरी जीवन की सुविधाएं नहीं हैं वहां सफलतापूर्वक ऐसे कालेज का चलना भी कम आश्चर्य की बात नहीं। विशेष बात यह है कि कॉलेज में अपने प्रकाशन विभाग से वार्षिक पत्रिका (मैगज़ीन) तथा फुटकर साहित्य भी प्रकाशित होता रहता है।

पहुँचने का साधन

शिमला से प्रातः कालीन बस (प्रातः 5 बजे, 8 बजे तथा मध्यान्तर 1 बजे) पकड़ कर

115 किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद यात्री सायं 4 बजे तक रोहड़ू पहुंच जाते हैं। इसी पहाड़ी मार्ग को तय करने में लगभग सात-आठ घण्टे लगते हैं क्योंकि मार्ग ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों के बीच होकर कभी, संकरा घुमावदार और कभी कच्चा-पक्का बन कर चलता है। सायं ठीक चार बजे रोहड़ पहुंचने पर उसी समय जांगला बस तैयार मिलती है। चूक गए तो दूसरे दिन प्रातः 9 बजे जांगला बस से चल कर 10 बजे यहां पहुचा जा सकता है।

रोहड़ू इस क्षेत्र का प्रसिद्ध नगर है जिस में हर प्रकार की नागरिक सुविधा का जीवन मिल सकता है केवल कोई कालेज नहीं था किन्तु अब जांगला संस्कृत कालेज की एक शाखा यहां भी स्थापित कर दी गई है। दो बड़े बाजार, पोस्ट आफिस अतिथि गृह पुलिस चौकी, तहसीलदार, उपमण्डल, दण्डाधिकारी तथा बी.डी.ओ. का कार्यालय भी यहां है। इसके अतिरिक्त हाई स्कूल, मिडल स्कूल आदि शिक्षा संस्थाएं भी हैं। यहां की आबादी भी लगभग 6000 है। रात को बिजली की चकाचौंध रहती है। कुछ होटल भी हैं ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं इस की मान्यता का संकेत देती हैं। यहां की पब्बर नदी के किनारे से होती हुई बस सर्पाकार राज मार्ग पर दौड़ने लगती है। पब्बर भी वड़ियारा स्टेशन तक इस का साथ देती है।

प्रातः काल की बस सीधे वड़ियारा से होकर जांगला पहुंचती है। वड़ियार से जांगला की सीमा शुरू होती है जो लगभग चार किलोमीटर तक चली गई है। यहीं से इस नगर की विशाल पर्वत माला और हरे भरे खेत लहराते हुए दिखाई पड़ने लगते हैं। बीच में कल कल करती हुई मथरेड़ नदी भी इस स्थान तक हमारा साथ देती है। थोड़ी दूर चलकर हरे भरे वृक्षों और शस्य श्यामल खेतों से जांगला के पक्के भवन दिखाई देने लगते हैं। इस समय यह लघु नगर अपनी अद्भुत सुन्दरता के कारण अमरावती नगरी का सपना संजोने लगता है। यह पहाड़ों से ढ़के हुए श्यामल खेतों वाले मैदान में आबाद है जहां पर मानों प्रकृति प्रसन्न होकर सम्पदा की वर्षा कर रही हो। आस पास की पर्वतमाला के मध्य भाग तथा उस पर बसे गांव के गांव आर पार दिखाई देते हैं इनके निवासियों का ध्यान कर के मन में स्वतः प्रश्न उठने लगता है। इस सुनसान घाटी में साधन हीनता का शिकार बन कर कैसे रहते होंगे ये लोग। किन्तु यहां एक सप्ताह व्यतीत करने पर इस प्रश्न का उत्तर स्वयं मिलने लगता है। वास्तव में ये प्रकृति के वरद पुत्र हैं इन्हें प्रकृति से जो स्वभाविक सम्पदाएं मिली हैं वे नागरिकों के भाग्य में कहां? सुस्वादु जल, स्वास्थ्यप्रद हवा, फल फूल, अनाज, शहद, लकड़ी, वनस्पति आदि शुद्ध वस्तुओं के उपभोग का दैवी वरदान इन्हीं को मिला हुआ है।

रहन-सहन तथा धार्मिक आस्थाएं

यहां के लोग सरल और सादा जीवन व्यतीत करते हैं। पहरावे की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। सादी वेशभूषा प्रमाणिकता प्राप्त होने के कारण हीन भावना

की द्योतक नहीं। ऊन का पायजामा, कोट और हिमाचली टोपी यहां की मुख्य पोशाक हैं। स्त्रियां सलवार ओवर कोट कमर में कपड़ा और सिर पर ढाटू पहनती हैं। कपड़े मैले भी हैं तो भी उन पर कम ध्यान दिया जाता है। यहाँ स्त्रियों में पर्दा नहीं है। उन का मुख्य कार्य घर में भोजन बनाना और खेत में दिन भर काम करना है। इस लिये गृहस्थी में स्त्री की सब से अधिक आवश्यकता और उपयोगिता है, जिसके बिना घर गृहस्थी का चलना असम्भव है। लड़के का पिता लड़की वालों के जाकर लड़की माँगता है। यहाँ अधिकतर बाल विवाह की प्रथा थी जो अब धीरे-धीरे घटती जा रही है। बाल विवाह का कारण घर में स्त्रियों की प्रबल आवश्यकता थी। किशोर चाहे छोटा हो लड़की उतनी उम्र की होनी चाहिये जो घर का पूरा काम चला सके। घर के खेती आदि इतने कार्य होते हैं जिससे लड़का न पढ़ पाता है और न नौकरी की आवश्यकता समझता है। जीविका के मार्ग पर्याप्त मात्रा में खुले पड़े हैं जैसे खेती, सेवों का कार्य, आरा और श्रेशर लगाना, ठेका लेना व सरकारी प्रोजेक्टों में दैनिक मजदूरी पर कार्य करना आदि आदि। इन आय के स्त्रोतों से बिना पढ़े भी घर बैठे पैसा कमाया जा सकता है। यही कारण है कि यहां के लोगों के आगे गरीबी और बेकारी की कोई समस्या नहीं। दूसरा यहां न दहेज की प्रथा है और न विवाह शादियों में पुरानी कोई ऐसी प्रथाएं थी जिनके अन्दर अनाप शनाप पैसा खर्च किया जाए।

सामाजिक परम्पराएँ

यहाँ के निवासियों की सामाजिक परम्पराएं कुछ क्षेत्रीय विश्वासों पर आधारित है, जिस का कारण क्षेत्रीय देवताओं पर आधारित आस्था और विश्वास है। यही नहीं इन देवताओं पर यहां की जनता पर अनिष्ट सम्बन्धी आतंक भी हैं। डर कर सही या यूं मान लीजिये यहाँ के लोग इन देवी देवताओं को ही अपनी स्वर्तोमुखी सुख शान्ति का साधन मानते हैं।

यहाँ न अवतारों की और न पौराणिक देवताओं की कहीं पूजा देखी गई है। कहीं कहीं शिव मन्दिर अवश्य हैं किन्तु वहां भी नित्य प्रति पूजा का प्रबन्ध नहीं देखा गया। ऐसा कोई गांव न होगा जहाँ का अपना देवता वहाँ स्थापित न हो। कहीं तो एक ही देवता विशाल समूह जन द्वारा अपना देवता माना जाता है। जांगला का मुख्य देवता इसके पास के गाँव थली में विराजमान है। इसे महासू गुडारू कहते हैं। पास के गांव नंडला का देवता परशुराम एवं महासू है। साथ के कुल गांव का देवता श्यालू है। हरिजनों का देवता अलग है जो जांगला में तथा हरिजनों के प्रति गांव में अलग-अलग पालकियों या कलश के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन सब का नाम एक ही है किलवालू (मूलनाम किलवदाना) जो कि किन्नौर के किलवा नामक गांव से आया था। इन देवताओं पर स्थानीय जनता की भावना चमत्कार मूलक रहती है। इनका विश्वास है कि सुख दुःख सम्पति विपत्ति इष्ट अनिष्ट आदि सब प्रकार की परिस्थितियां देवता द्वारा ही पैदा की जाती हैं। ये देवता अधिकतर तामस है। क्योंकि इन की प्रधान पूजा पर बकरे की बलि दी जाती

है। कहीं-कहीं शराब की भी। यहां देवताओं के नाम पर बड़े-बड़े उत्सव भी मनाए जाते हैं उन्हें मेले के रूप में लिया जाता है। साल भर में तीन-चार ऐसे मेले सम्पन्न हो ही जाते हैं जिनमें देवता की झांकी निकाली जाती है। उसे पालकी में बैठा कर नचाते हैं। पीछे ढोल, तुरियां गाजे बाजे बजते हैं। लोग भी परम श्रद्धा से झूमते हैं नाचते है। लोक नृत्य भी होते हैं। किसी स्थान पर जातर (आत्मा के आवेश से देवता का पुजारी नाचता है और लोगों के प्रश्नों के उत्तर भी देता है) होती है जिस में देवता आ जाता है उसे कंपकंपी होने लगती है वह झूमता हुआ प्रश्नों के सत्य उत्तर भी प्रश्न कर्ताओं को देने लगता है। लोग अपने इष्ट अनिष्ट सम्बन्धी प्रश्नपूछते हैं। इस नृत्य के समय ढोल मंजीर तथा अन्य बाद्य झनझना उठते हैं। इन देवताओं के बारे में कई चमत्कारी लोक गाथाएं भी हैं।

वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में यहां कोई आर्थिक कठिनाई नहीं देखनी पड़ती। दहेज प्रथा तो है नहीं। भारत के अन्य प्रान्तों की तरह यहां परम्परागत अर्थसाध्य औपचारिकताएं नहीं की जाती। पण्डित द्वारा कुछ मन्त्र पढ़वा कर दो-चार सूट देकर ही विवाह सम्पन्न किया जाता था। बिरादरी को भोज तो देना पड़ता है उसमें भी कठिनाई नहीं होती सारा राशन अपनी खेती का ही होता है। हां लड़के वालों को स्वर्ण भूषणों के क्षेत्र में थोड़ा सोना अवश्य देना पड़ जाता है जो दो-चार तोलों में ही सीमित रहता है। इच्छानुसार अधिक भी दिया जा सकता है।

बाल विवाह यहां की प्राचीन प्रथा है जो अब नई चेतना के युग में घटती जा रही है। इसी प्रकार बहुपति प्रथा भी पिछले युग से चली आ रही है। किन्तु अब यह भी लुप्त प्रायः हो रही हैं। इसी प्रकार बहुविवाह भी प्रचलित है इस प्रथा में अभी कमी नहीं आ पाई किन्तु आगे आ भी सकती है। स्त्रियों के सम्बन्ध में अभी यहां सामन्तीय विचार ही अधिक प्रचलित हैं जिसके कारण पुरुषों का स्त्रियों पर अधिक दबाव देखा गया है। स्त्रियों में भी कोई ऐसी चेतना अभी नहीं उभरी है जिसके अन्तर्गत वे अपने अधिकार पूरण जीवन पर कुछ सोचें। हां स्त्री शिक्षा प्रचलित अवश्य है। इसी कारण कुछ स्त्रियां पढ़कर नौकरी भी कर लेती है। फिर भी विवाहोपरान्त उन्हें पुरुषों के आदेश का पूरा पालन करके घरेलू कार्यों का निर्वाह करना पड़ता है।

यहाँ मांस भक्षण बुरा नहीं माना जाता। इसी प्रकार सुरा पान का भी अधिक प्रचार है। उसे इतना हेय नहीं माना जाता जितना भारत के शेष प्रान्तों में कुछ बर्गों द्वारा माना जाता है।

धार्मिक भावना के क्षेत्र में यहां नास्तिकता नहीं है। क्षेत्रिय देवतावाद के प्रबल रहते हुए भी साधारण जनता वैष्णव विचारों का आदर करती है उन के व्याख्याताओं को श्रद्धा पूर्वक सुनती ही नहीं बल्कि उन का हृदय से सम्मान भी करती है। आवश्यकता पर दान भी देती है। यहां वैष्णव पूजा का एक ही प्रतीक अधिक व्यापक है। सत्य नारायण का व्रत कथा तथा उसके उपलक्ष्य में धूमधाम के साथ सभोजनक उत्सव

मानना। इसके अतिरिक्त भगवती दुर्गा के सात्विक तथा तामस रूपों की पूजा भी अत्यधिक व्यापक है। किन्तु इस पूजा में भी अधिकतर बकरे की बलि लगती है। हाट कोटी जो भगवती का प्रसिद्ध पीठ है वहां भी बकरे काटे जाते हैं। भगवती को आराधना पूजा तथा तत्सम्बन्धी मनौतियों का यहां पर्याप्त प्रचार है।

लोगों की जीवन चर्या सादी और सरल है। वे अधिकतर खेती को महत्व देते हैं। बजार से आनाज खरीद कर खाना इन के लिए अपनी परम्परागत कुल मर्यादा और गौरव के लिए विघातक माना जाता है। शिक्षा के प्रति अधिक रूचि नहीं है तथापि शैक्षणिक विचारों का इनमें दिनों दिन विकास हो रहा है और अब अधिकतर बच्चे शिक्षा पाकर भी अपने परम्परागत व्यवसाय खेती में ही अधिक योगदान देते हैं।

यहां का जोवन सरल शान्त और स्वच्छ है। जिस में नवीन युग में प्रचलित अनेक बुराईयां अभी यहाँ नहीं उभरी हैं। चोरी डकैती अपहरण छल, कपट आदि दुर्गुण का यहां प्रवेश नहीं है। इन सब दृष्टियों से जांगला हिमाचल का एक अनजाना स्वर्ग है जिस पर प्रकृति का वरदान साकार हो उठा है। इसे देख कर मन में सहसा कल्पना उठती है यदि पर्यटक वर्ग की दृष्टि एक बार इस पर पड़ गई तो यह सफल पर्यटक स्थल भी अवश्य बनेगा।

प्रधानाचार्य
हिमाचल सरस्वती संस्कृत
कालेज जांगला
रोहड़ू, शिमला (हि. प्र.)

(पृष्ठ 5 का शेष)

संजीदगी पे इसकी कितने ही दिल भर आए।
उठे थे लेके झण्डा तुम इन्कलाब का जब।
कुर्बानियों के पुतले आते थे सिर उठाए।
इस वकत अपनी दुनियां कितनी बदल चुकी है।
बैठा है इन्कलाबी वे दिल सा सिर झुकाए।

यशपाल साहित्य परिषद्
अपर बाजार नादौन-१७१०३३
हमीरपुर हि. प्र.

सीता हरण

– मोहन राठौर

हिमाचल के लोक जीवन पर रामायण तथा महाभारत का बहुत गहरा प्रभाव है। यहां की विभिन्न बोलियों में इन ग्रन्थों के कथात्मक तथा काव्यात्मक दोनों रुप मिलते हैं। लोक रामायण के पद्यों को दीपावली आदि के उत्सवों, अवसरों पर तथा लोक महाभारत को देवी-देवताओं के यज्ञों और उत्सवों के अवसरों पर समूह नृत्यों के साथ लोग प्रदर्शित करते हैं। महाभारत के प्रसंग देवी-देवताओं के पूजा गीत आदि के रुप में प्रचलित है।

रामायण के सीता हरण प्रसंग को महासुवी लोक गीतों में इस प्रकार गाया जाता है।

सोया अ लखणौ राम जे राजा रे,
सुनेरा मान्तौ मिरगौ आजा रे।

सीता जी ने कहा लक्ष्मण तथा राजा राम जी देखो क्या अजीब बात है, सोने का मृग आया है।

कैरके ड़ेवै औ लखणौ जते रे,
मिरगौ-झांगणें रे लागेअ अते रे।

जब सीता जी ने मृग को मारने की जिद की तो राम जी कहते हैं, कि यत्ती लक्ष्मण वहां चले गये हैं। इस मृग को मारने के लिये सीता जी अत्यन्त ज़िद कर रही हैं।

मिरगौ देखेयौ सुध-बुध खोए रे,
राम जी मिरगौ झांगदे ड़ोए रे।

मृग की सुन्दरता देख कर जब सीता जी ने अपनी सुध-बुध खो दी तो राम जी मृग को मारने निकल पड़े।

धणूअ-गन्टिया लखणे रे रेखा रे,
किया था रावणे साध टेरा भेष रे।

जब बड़ी देर हो गई राम जी वापस न लौटे तो लक्ष्मण ने धनुष से कुटिया के चारों ओर रेखा लगाई और स्वयं राम जी की खोज में निकले। रावण साधु का रुप धारण करके वहां पहुंचा।

घड़े अ हौणी रे टलि्य न टल़ रे,
दुष्टे रावणे कोया थीया छल़ रे।

होणी तो हो के ही रहती है, दुष्ट रावण ने राक्षसी माया रच कर छल किया।

रामोरी राणीय बाहरे आये रे,
सुन्नुए महते किन्दरे लाये रे।

रावण ने कहा कि हे राजा राम की रानी सीता बाहर आओ देखो सुन्नू महत्ता (मारीछ) गायन-वादन कर रहा है और किन्नरी वीणा बजा रहा है।

रामोरी राणीए बाहरे आये रे,
विच्छैया देन्देये भल़ रे जाये रे।

रावण ने कहा कि हे राम की रानी बाहिर आओ और हम साधुओं को भिक्षा दो क्योंकि तुम कुलीन व उच्च वंश की बेटी हो।

बा जी किन्दरे, किन्दरे रे तार रे,
निग्र सितौला रावणे हार रे।

ज्यों ही सीता बाहिर निकली बीणा बजाने के साथ ही रावण सीता को हरण कर के ले गया।

इस प्रकार सीता हरण के प्रसंगों को लोक भाषा में विभिन्न धुनों में गाया जाता है जिसे लोग पीढ़ी दर पीढ़ी गाते आये हैं। इस प्रकार लोक परम्परा और संस्कृति जीवित रहती है।

सांस्कृतिक आयोजक,
भाषा एव संस्कृति विभाग,
शिमला-१

कांगड़ा घाटी का डीनू नाग

--रजनी बाला धींगड़ा

नगरोटा-बगवां से लगभग ९ कि. मी. दूर एक छोटा सा गाँव है—सीयूंड, पैदल मार्ग से इसकी दूरी ३ कि. मी. है। यहां पर अधिकतर चौधरी जाति के लोग रहते हैं। गांव के साथ ही कल-कल नाद करती हुई नदी अविरल गति से बहती है। इस गांव में 'डीनू' नाग का एक मन्दिर है जिसका सक्षिप्त विबरण यूं है :—

यह मन्दिर लगभग 200 वर्ष पुराना है इस की स्थापना किसी राह चलते सिद्ध महात्मा ने की थी जिसका नाम-पता किसी को भी नहीं मालूम।

'डीनू नाग' सर्पों की एक किस्म है जो सफेद रंग के होते हैं। सीयूंड में पहले एक चरागाह थी। लोगों के पशु इस चरागाह में घास चरने के लिए जाते थे। साथ में एक चरवाहा भी जाता था जिसे यहां के लोग 'पाली' कहते थे। सन्ध्या के समय चरवाह पशुओं को वापस लेकर आ जाता था। एक बार जबकि सब पशु वहां घास चर रहे थे तो एक सफेद सांप वहां आ गया जिससे डर कर सभी पशु रंभाने लगे। चरवाहे नें जब देखा तो वह भी डर गया। तभी उसने देखा कि वह सांप दो-तीन गऊओं का दूध पी कर चला गया लेकिन उसने किसी को हानि नहीं पहुंचाई। शाम को चरवाहे ने सारी बात गऊओं के मालिक को बताई। उन्होंने समझा कि वह उनसे मजाक कर रहा है इसलिए उसकी बात अनसुनी कर दी। दूसरे दिन सांप फिर चरागाह में आया और दूध पी कर चला गया। कुछ दिन यही सिलसिला चलता रहा। एक दिन गांव के लोगों ने सोचा कि सही बात का पता लगाना चाहिए, कहीं ऐसा तो नहीं कि यह 'पाली' स्वयं दूध पी लेता हो और सांप का बहाना बना देता हो। गांव के लोग एकत्रित हो कर चरवाहे और पशुओं के साथ ही चरागाह में पहुंच गएं। पशुओं को घास चरते देखकर सांप भी आ गया। जैसे ही सांप ने दूध पीना शुरू किया लोगों ने उसे पत्थर मारने शुरू कर दिए जिससे सांप ने दूध पी कर गऊ को डस लिया। वह गाय निढाल हो कर गिर पड़ी। इससे पहले उस नाग ने किसी को हानि नहीं पहुंचाईथी। कुछ दिन ऐसा ही होता रहा। सांप दूध पीने लगता तो लोग पत्थर मारते और वह उसी गाए को डस लेता।

लोगों ने डर के कारण अपने पशु चरागाह में भेजने बन्द कर दिए। अब वह सांप लोगों के घरों में जा कर पशुओं का दूध पीने लगा। वह किसी को कुछ नहीं कहता था लेकिन यदि कोई उसे छेड़ता तो वह उसे डस लेता। गांववासी सभी प्रयत्न कर चुके थे

लेकिन वे सांप का कुछ न बिगाड़ सके । देवयोग से उस गांव में एक महात्मा आ गए । विश्राम करने के लिए हरे-भरे वृक्ष, पीने के लिए पानी की बावली को देखकर उन्होंने कुछ दिन वहां ठहरने का विचार किया । लोगों ने जब महात्मा के आने का समाचार सुना तो वे उनके पास गए। उनको यथाशक्ति भोजन कराकर अपनी व्यथा कह सुनाई। सारी बात सुन कर महात्मा ने आश्वासन दिया कि वह कल स्वयं पशुओं के साथ जाएंगे। दूसरे दिन सभी व्यक्ति अपने पशुओं को साथ लेकर महात्मा के साथ चरागाह में पहुचे । उस महात्मा ने एक गढ़ा खुदवाया और गढ़े में दूध से भरा एक घड़ा रखवा दिया। पशुओं को आया देखकर वह सांप भी वहां आ गया जैसे ही वह दूध पीने के लिए पशुओं की ओर बढ़ा कि उस महात्मा ने सांप को आदेश दिया 'नाग ! इधर आओ। तुम दूध यहां से पिया करो। लोगों को तंग मत करो। राम नाम का जाप किया करो। जिसका खाते हैं उसका भला करते हैं।" महात्मा का आदेश सुनते ही वह नाग उनके पास आ गया। तीन बार सिर हिलाकर उनको प्रणाम किया और फिर उस गढ़े में रखे घड़े में से दूध पीने लगा। महात्मा के इस चमत्कार को देखकर लोगों के मन में उनके प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी। वह महात्मा, लोगों के दिल की बात को भांप गए कि अब ये तरह-तरह के आर्शीवाद मांगेगे। उन्होंने लोगों से कहा कि, "आप लोग घरों को जाइए। पशुओं को आज हम चराएंगे।" लोग चले गए और वह महात्मा उस चरागाह से हो किसी अज्ञात स्थान को चले गए। गांव के लोग अब प्रतिदिन वहां दूध डाल आते थे और वह नाग पी लेता था लेकिन महात्मा जी की आज्ञानुसार वह किसी को तंग नहीं करता था। लोगों ने इस गढ़े को पक्का करवा दिया तथा वहां मन्दिर भी बनवा दिया।

कुछ समय बाद वह नाग लोगों का शुभचिन्तक बन गया। एक बार कुछ राहगीर विश्राम करने के लिए एक पेड़ के नीचे लेटे हुए थे कि उनका छोटा बच्चा घुटनों के बल चल कर पहाड़ी के बिल्कुल किनारे पर पहुंच गया। बच्चा गिरने ही वाला था कि उस नाग ने एकदम वहां जा कर बच्चे को अपने शरीर से रस्सी की भांति बांध लिया। डर कर बच्चा रोने लगा। बच्चे के रोने की आवाज़ सुन कर उसके माता-पिता की नींद खुल गई। वे उस ओर गए जहां से बच्चे के रोने का स्वर सुनाई दे रहा था। वहां जा कर उन्होंने देखा कि बच्चे को सांप ने गिरने से बचाने के लिए पकड़ रखा है। यदि बच्चा गिर जाता तो ३०० फुट नीचे नदि में जाकर गिरता। बच्चे के माता-पिता ने नाग को नमस्कार किया फिर बच्चे को सकुशल ले कर वापस लौट आए। नाग को अपना हितैषी जान कर लोगों ने उसे अपना देवता मान लिया जिसे कि आज भी चौधरी जाति के 'राड़' लोग अपना देवता मानते हैं। कुछ सालों बाद वह नाग इच्छाधारी बन गया जैसा कि कहा जाता है कि सौ वर्ष के बाद सांप इच्छाधारी बन जाता है। इच्छाधारी बनने के बाद वह लोगों को भिन-भिन्न रुपों में दर्शन देने लगा। आज यह तीन रंगों-सफेद, ताम्बी तथा सुनहरी रंगों में दर्शन देता है। कभी-कभी मनुष्य रुप भी धारण करके दर्शन देता है।

जहां पर पहले दूध के लिए स्थान बनाया गया था वह वर्षा के कारण नीचे धंस रहा था। लोगों को वहाँ पहुंचने में कठिनाई होने लगी तो एक दिन 'डीनू नाग' ने उस गांव के ही एक व्यक्ति फूलाराम को स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि मेरे स्थान पर एक सफेद कपड़ा डाल दो। जहां पर वह कपड़ा पहुंचेगा, वहां मेरे लिए स्थान बना देना। प्रातः उठ कर उसने यह बात लोगों से बताई तो लोगों ने वैसा ही किया। वह कपड़ा और वहां जो दूसरा सामान पड़ा था दूसरे सुरक्षित स्थान पर जा गिरे जहां लोग आसानी से पहुंच सकते थे। लोगों ने वहाँ दूध डालने के लिए पक्का गढ़ा बनवा दिया है और छोटा सा मन्दिर भी बनवा दिया है। यह मन्दिर हरे-भरे चील के वृक्षों के मध्य में है। लोग यहां दूर-दूर से मन्नतें मानते आते हैं। जब उन्हें मनवांछित फल प्राप्त होता है तो वे यहां दूध और झण्डा चढ़ाने आते हैं। जो लोग इसे अपना देवता मानते हैं वे यदि कहीं दूर चले गए हों तो भी दूध चढ़ाने के लिए यहां अवश्य आते हैं। चौधरी जाति के लोग तो घर में दूध प्रयोग करने से पहले 'डीनू नाग' को अवश्य दूध चढ़ाते हैं। वे जाकर गढ़े में दूध डाल आते हैं जिसे 'डीनू नाग' पी लेता है। कई बार तो वहाँ एक से अधिक डीनू नाग दर्शन देते हैं। दो-तीन साल पहले इकट्ठे 101 नागों ने दर्शन दिए जो कि सैंकड़ों की संख्या में लोगों ने किए। कई बार तो 'डीनू नाग' लोगों के घरों में उसके लिए बनाए गए स्थान पर जाकर बैठ जाता है। उस घर के लोग उसे दूध डाल देते हैं। वह दूध पी कर बिना किसी को हानि पहुंचाए चला जाता है।

अब तो इस मन्दिर का काफी विकास हो रहा है। इसको सड़क से जोड़ दिया गया है। नदी पर पुल बन रहा है जिससे लोगों को हर मौसम में वहाँ आने-जाने में सुविधा हो जाएगी।

द्वारा पाल दवा खाना
नगरोटा बगवां, जिला कांगड़ा (हि०प्र०)

शिखर शैली के मन्दिर

– सुरेन्द्र मोहन सेठी

चम्बा में शिखर शैली के देवालयों का निर्माण 10वीं शताब्दी व इस के अनन्तर हुआ। इससे पूर्व के गुप्तकालीन मन्दिर इस प्रदेश में दृष्टिगोचर नहीं होते। प्रसिद्ध इतिहासकार और कला विशेषज्ञ हरमन गोइत्ज के मतानुसार इस प्रदेश में बहुलता से मिलने वाले साधारण पर्वतीय शैली के मन्दिर गुप्तकालीन मन्दिरों का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इन मन्दिरों में चकोर व सादे गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ व ऊपर ढलानदार स्लेट की छत बनी रहती है। इन मन्दिरों का आयताकार प्रवेश-द्वार सादा और चकोर गर्भगृह, चारों ओर बना प्रदक्षिणा पथ गुप्तकालीन वास्तुशिल्प [रचनाकुठारा, गोप अहींओल] की ओर इंगित करता है। ढलानदार छत, इस प्रदेश में जहां लकड़ी सरलता से उपलब्ध थी, बर्फ तथा वर्षा से बचाव के लिए आवश्यक थी। मन्दिर वास्तु के लिए समस्त भारत में पगोडा और ढलानदार छतों का उपयोग केवल हिमालय की तलहटी में और मालाबार (केरल) में हुआ जहां विशेष भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ऐसा आवश्यक था। इन दो प्रदेशों, भरमौर (चम्बा) और मालाबार (केरल) में अब तक काष्ठ शिल्प के मन्दिर विद्यमान हैं सम्भवतः इस प्रदेश में सातवीं शताब्दी तक भवन तथा मन्दिर के निर्माण का मुख्य साधन काष्ठ ही था। इस प्रदेश में मिले उदुम्बर गण-राज्य के सिक्कों (2री शताब्दी ई० पू०) के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में उस समय कई छतों वाले काष्ठ के शिव मन्दिरों का निर्माण हुआ। इन पर अंकित भारत के ये सर्व प्रथम मन्दिर हैं, जो शिव के लिए निर्मित थे।

गुप्तकाल के अन्त तक लगभग समस्त भारत में भवन निर्माण के लिए तराशे हुए पत्थरों का प्रचलन आरम्भ हो गया था। इतिहासकार हरमन गोइत्ज के मतानुसार ऐसा उपयोग मध्य एशिया से आई बरबर जातियों के हमलों के कारण हुआ जिन्होंने वनों को तहस-नहस कर दिया। ये लोग खुले और स्वच्छन्द वातावरण में रूचि रखते थे। खुले स्थानों में लड़ना इन्हें पसन्द था जबकि इनके प्रतिद्वन्दी वनों में रहकर अपना बचाव कर सकते थे।

कला विशेषज्ञों का मत है कि चम्बा व हिमाचल के शिखर मन्दिरों का निर्माण करने वाले शिल्पकार अस्थानीय थे और शिखर शैली के मन्दिरों का आगमन मैदानों से पहाड़ों

में हुआ। परन्तु इन मन्दिरों के वास्तुशिल्प और मूर्तिकला में स्थानीय प्रभाव भी दृष्टिगोचर होते हैं, जिनका समावेश कर पाना बाहर से आये हुए शिल्पकार के लिए असम्भव सा था। इस प्रदेश से वास्तु विद्या अथवा शिल्पशास्त्र का ऐसा कोई स्थानीय प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ जिसके मापदण्ड पर इन मन्दिरों का निर्माण हुआ हो जबकि 15वीं 16वीं शताब्दी तक भी इस प्रदेश में शिखर शैली के मन्दिरों का निर्माण होता रहा। ऐसी कोई प्राचीन पारिवारिक परम्परा इस प्रदेश में नहीं दिखाई पड़ती। भूरी सिंह संग्रहालय चम्बा में सुरक्षित ताम्रपत्र (11वीं शताब्दी) में नरसिंह मन्दिर भरमौर (चम्बा) से सम्बन्धित ब्राह्मणों को भूमि अनुदान में दी गई है। जिसका उपयोग आज तक पीढ़ी दर पीढ़ एक ही ब्राह्मण परिवार द्वारा होता रहा है। इसके अतिरिक्त इसी प्रकार के अन्य ताम्रपत्र भी भूरी सिंह संग्रहालय चम्बा में मौजूद है परन्तु किसी में भी शिल्पकारों के नाम अथवा उन के परिवारों का उल्लेख नहीं है।

चम्बा में शिखरशैली मन्दिरों की संख्या लगभग पन्द्रह है। इन मन्दिरों मेंचम्पावती, हरिराय, बंसीगोपाल, हड़िम्बा देवी (महला) राधा-कृष्ण, बृजेश्वरी व भरमौर के नरसिंह और मणीमहेश मन्दिर प्रमुख हैं। इन मन्दिरों के वास्तु स्थापत्य के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह सभी मन्दिर लक्ष्मीनारायण मन्दिर को माडल रख कर सर्व प्राचीन मन्दिर है।

चम्बा के शिखर मन्दिरों की संख्या शहर के मध्य अथवा निकटवर्ती क्षेत्रों में अधिक है। अतः इन मन्दिरों का निर्माण पहाड़ों की चाटियों, नदियों अथवा जलाशयों के समीप न होकर शहर के मध्य अथवा निकटवर्ती क्षेत्रों में हुआ है। पहाड़ों की चोटी पर प्रायः साधारणतः पर्वतीय शैली के मन्दिर ही दृष्टिगोचर होते हैं जो नाग, देवी अथवा शिव को समर्पित हैं। चम्बा के इन शिखर मन्दिरों का निर्माण यद्यपि समतल भू-भाग पर हुआ है पर इसे "जगती" की संज्ञा नहीं दी जा सकती। चम्बा का शायद ही कोई ऐसा शिखर मन्दिर हो जिसके साथ कोई न कोई जात्र अथवा मेला न जुड़ा हुआ हो अतः इन मन्दिरों के आगे खुला प्रांगण एक आवश्यकता थी जबकि मण्डपों का निर्माण शिल्पकारों ने स्वाभाविक नहीं समझा। मण्डप न बनने का कारण यह है कि इस प्रदेश में उस प्रकार के नृत्यगान व रीतियों की परम्परा का अभाव होना था जिनका सम्बन्ध वामपंथी तन्त्रविद्या या देवदासीसे था। शायद यही कारण है कि इस शिखर मन्दिरों में मिथुन आकृतियों का अंकन केवल उन भागों में है जिन्हें दर्शक आसानी से नहीं देख पाता। इन मन्दिरों के अधिष्ठान व वेदी-बन्ध के भाग का निर्माण खुर, कुम्भ, कलश, जाड्यकुम्भ और कर्णक अवयवों द्वारा हुआ, जिन पर प्रायः गजपीठ, कीर्तिमुख हंसमाला, रत्न, अर्धरत्न, कमल की सज्जा पंक्तियों का अंकन है। इन अवयवों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिरों के वास्तु स्थापत्य कर पश्चिमी भारतीय शैली का प्रभाव है, जिसे मन्दिर कला विशेषज्ञ एम०ए० धाके महामरू शैली की संज्ञा देते हैं। इन मन्दिरों के जघा भाग पर रथिक की संयोजना हुई है जिन के ऊपर शिखर बनाये गये हैं। सम्भवतः इन रथिकाओं

पर शास्त्रीय विधान के अनुकूल उन्हीं देवताओं की स्थापना की गई जो गर्भगृह के भीतर विराजमान प्रमुख देवता से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित थे। इन मन्दिरों की जंघा भाग के ऊपर साधारण अन्तरपत्र दृष्टिगोचर होता है जिसके ऊपर सादे गोलाकार शिखर की संरचना मिलती है। सभी मन्दिरों में रथ, प्रतिरथ और कर्णरथ दृष्टिगोचर होते हैं। केवल कर्णरथों को ही भूमियों व अमलकों द्वारा सजाया गया है। इनकी संख्या विषम है। प्रवेशद्वार के आगे अन्तराल और इसके ऊपर शुकनास के शीर्ष भाग पर "अश्वमुख" निर्मित किये गए हैं। मन्दिरों के प्रवेशद्वारा कई शाखाओं में विभक्त हैं जिन के दोनों ओर गंगा और यमुना को प्रतिमाओं की संयोजना हुई है। गर्भगृह से पानी के निकास के लिए प्राय: उत्तर की ओर मकर परनाले का प्रावधान रखा गया है।

चम्बा के शिखर मन्दिरों में प्रमुख मन्दिर लक्ष्मीनारायण व इस के प्रांगण में स्थित अन्य पांच शिखर मन्दिर हैं। इन मन्दिरों की एक विशेषता इन का विशालकाय आकार है। इन मन्दिरों के निर्माण के लिए तराशे गये हल्के भूरे रंग के क्वारटजाईट पत्थर जो चम्बा की पूर्व कैम्बरियन भू-स्थिति से सम्बन्धित हैं, का इस्तेमाल किया गया है। इन पत्थरों की चिनाई में चूना व सुर्खी का प्रयोग हुआ है। ये पत्थर 30 सैं०मी० से 50 सैं०मी० लम्बे, 10 सैं०मी० से 15 सैं०मी० चौड़ और 10 सैं०मी० से 20 सैं०मी० मोटे हैं। आम धारणा यह है कि मन्दिरों के लिए बकलोह क्षेत्र (चम्बा) से पत्थर लाये गये परन्तु चम्बा के पत्थरों के अध्ययन इस तथ्य को पुष्टि करते है कि मन्दिरों हेतु लाया गया पत्थर निर्माण स्थल से एक किलोमीटर से अधिक दूर नहीं था।

पञ्जीकरण अधिकारी
भाषा एवं संस्कृति विभाग,
धर्मशाला

हिमाचल प्रदेश की जातियों का ऐतिहासिक परिचय

-- केशव चन्द

हिमाचल प्रदेश में अनेको जातियों के लोग रहते हैं, इन जातियों को दो श्रेणियो में बांटा जाता है। एक जातियां व दूसरी जन-जातियां परन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण जातियों की ऐतिहासिकता को छुपा देता है। यहां की जातियों के इतिहास का ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि यहां बहुत सी जातियां आई रहती हैं। समय के बीतने के साथ उनका रुपातरंण हुआ।

यहां पर जाति शब्द का प्रयोग वर्ण-व्यवस्था की धारणा के अनुरुप न होकर भिन्न है। यहां जाति का अर्थ है एक गोत्र, एक रक्त सम्बंध वाले लोगों का समूह, जैसे किन्नर, थिरथ, गुज्जर, गद्दी आदि।

अपने भौगोलिक स्वरुप के कारण हिमाचल हमेशा से लोगों के बसने के लिये एक निरापद क्षेत्र रहा। यहां के घने वन ऊचे-ऊंचे पहाड़ और नदी घाटियाँ लोगों को सुरक्षा भी प्रदान करते रहे और आजीविका भी। जीवन के लिये परिस्थितियां कठिन तो रही परन्तु डर, भय अधिक नहीं रहा।

देश के अन्य भाग जैसे पंजाब, हरियाणा, उतर प्रदेश, बिहार व दक्षिणी भारत अपनी भौगोलिक स्थितियों के कारण ही स्थानीय युद्धो व विदेशी आक्रमणों की चपेट में अनवरत आते रहे क्योंकि इन क्षेत्रों का अधिकांश भाग समतल था, वन भी हिमाचल के क्षेत्र जैसे नहीं थे और समतल क्षेत्रों में नदियों का लाँघना भी कठिन नहीं था। साथ ही ये क्षेत्र बड़े उपजाऊ थे। हिमाचल के पहाड़ी क्षेत्र में यातायात तो बहुत ही कठिन था। नदियों को भी पार करना कठिन था और यहां पर समतल व उपजाऊ भूमि भी अधिक न थी। इन्हीं कारणों से मैदानी क्षेत्रों से कई बार युद्धों व हमलों की मार से तंग आये लोग इन पहाड़ों की ओर चले आते रहे और अपनी सुविधा देख कर बसते रहे।

हिमाचल की प्राचीन जातियों ने नये आने वाले लोगों का प्रतिरोध नहीं किया यह अनुमान किया जा सकता है। इस के कई कारण रहे। एक तो यह कि मैदानी क्षेत्रों से लोग युद्धों व हमलों से तंग होकर आये अतः यहां आकर पुनः वे लड़ाई के बखेड़े में नहीं पड़ना चाहते थे। जब आगंतुक लड़ना नहीं चाहते थे तो स्थानीय लोग उनको बसने

से नहीं रोकते थे। फिर आगंतुक स्थानीय शासकों की व्यवस्था स्वीकार कर लेते थे और एक बात यह भी थी कि मैदानी क्षेत्रों से आने वाले लोग दस बीस या सैंकड़ा की गिनती में ही आते थे और अपने पशुधन अपने घर की वस्तुओं व परिवार को साथ लेकर चलते थे। ऐसी स्थिति में वे युद्ध का बखेड़ा खड़ा कर ही नहीं सकते थे।

कई बार ऐसा भी होता था कि स्थानीय लोग अगंतुकों में से किसी प्रभावशाली व्यक्ति को राजा बना देते थे ताकि मिलजुल कर रहने के आधार और पक्के हो जायें। फिर हिमाचल में बसे प्राचीनतम लोग नये लोगों के आने की प्रक्रिया से पहले से परिचित थे। और कभी कभार कोई छोटी मोटी टक्कर हो भी जाती थी परन्तु उसको सदियों की शत्रुता का आधार नहीं बनाया जाता था।

हिमाचल प्रदेश की प्राचीन जातियों में किन्नर जाति ही एक ऐसी जाति है जो आरम्भ से आज तक सब कालों में विद्यमान रही है। इस जाति का प्रदेश किन्नर प्रदेश सम्भवतः पहाड़ों में बहुत दूर होने के कारण हर काल में युद्धों व विदेशी आक्रमणों की चपेट से दूर रहा। यही कारण है कि यहां पर भारत की एक प्राचीनतम जाति अपना जातीय स्वरूप बनाए रख सकी।

इतिहासकारों के मतानुसार किन्नर लोग किरात जाति की एक शाखा है। यक्ष गंधर्व व किन्नर किरात जाति के ये तीन अंग थे। अन्य प्राचीन जातियों की उपस्थिति के यहां अवशेष तो अवश्य मिलते हैं परन्तु उनका एक समूह में या अलग रूप में पाया जाना असम्भव है। यक्षों के यहां होने के प्रमाण हैं। उनके नाम से सम्बद्ध कई स्थान हैं व उनके बारे में कई लोक कथाएं हैं परन्तु चूंकि वे किरात जाति का अंग थे अतः उसी में मिल गये। नाग राक्षस अन्य प्राचीन जातियां हैं जो लगता है यहां रही हैं। राक्षस जाति के यहां होने में संन्देह है क्योंकि हिडम्ब के एकमात्र वर्णन के अलावा और कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता जो इस जाति के यहां होने को सिद्ध करता हो। यद्यपि लोक साहित्य में राक्षसों सम्बन्धी कथायें भी अवश्य हैं। यदि यह जाति यहां रही होगी तो निश्चय ही किसी स्थानीय ऐतिहासिक कालीन जाति में समाहित हो गई होगी।

नाग जाति भी यहां रही है। ऐतिहासिक तथ्य ये है कि यह जाति नदियों के किनारे रहती थी। मच्छली का आखेट करती थी। किश्तियों द्वारा नदी यात्रायें व अन्य काम करती थी। नाग या सांप इनका टोटेम था। गरूड़ जाति इनकी कट्टर शत्रु थी। महा भारत समाप्त होने के समय तक इनकी आर्यों के साथ भी टक्कर चलती रही। अभिमन्यु के पुत्र परिक्षित को नागों ने मारा था। परिक्षित के पुत्र जन्मेजय ने नागों को नष्ट करने के लिये यज्ञ किया था। हिमाचल प्रदेश में नागों के मन्दिर लगभग सब जगह हैं। इनकी देवता के तौर पर मान्यता है। जाति के रूप में ब्राह्मण जाति में कांगड़ा व कुछ अन्य स्थानों पर नाग मिलते हैं। लगता है नाग आर्यों में अंतर्मुक्त हो गए।

रही बात आर्यों की, आर्य तो हिमाचल प्रदेश में समय-समय पर आते ही गये। सर्व प्रथम ऋग्वेद काल में आर्य राजा दिवोदास का किरात राजा शम्बर से युद्ध हुआ जो कई वर्ष तक चला था। इस युद्ध में शम्बर की हार हुई थी और वह मारा गया था। इसी विजय के साथ आर्यों का पहाड़ों की ओर आने का क्रम जारी हो गया था जो भविष्य में निर्बाध चलता रहा।

प्राचीन काल की इन जातियों के अलावा समय के बीतने के साथ हिमाचल प्रदेश में अनेकों जातियों के लोग आये। कुछ प्राचीन जातियों के नाम बदल गये और उनके नये नाम हो गये। समय के साथ प्राचीन काल ऐतिहासिक काल व आज के समय के बीच तारतम्य जोड़ने वाली कड़ियां या तो नष्ट हो गई या उन पर अज्ञानता का पर्दा पड़ गया। परन्तु इतिहास काल में जो जातियाँ हमें नजर आती है वे निश्चय ही आसमान से नहीं टपकी। उनकी जड़े इतिहास में ही जा सकती ढूंढी हैं।

इतिहास काल से हमारा अभिप्राय है, वह काल जब से देश में लिखित ऐतिहासिक सामग्री मिलनी प्राप्त हुई। इतिहास काल से यह भी अभिप्राय: है कि जब आर्यों व अन्य प्राचीन जातियों को हिन्दुकुश पार से या तिब्बत के पठारों के रास्ते भारत में आये व बसे कई शताब्दियों बीत गई और नई आक्रमणकारी जातियां फिर से आनी आरम्भ हो गई। नये युद्ध होने लगे। धरती और राज्य एक जाति से दूसरी जाति के हाथ में जाने लगा।

भारत वर्ष के उत्तर पश्चिम से जब यवनों का रेला आया जिनका नेतृत्व सिकन्दर कर रहा था तो उसने भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के प्राचीन राज्यों को जिनमें कुछ गणतंत्र थे तो कुछ पितृ सताक राजतंत्र, तहस नहस कर दिया और वहां पर शक्तिशाली यवन राज्य स्थापित किया। इस काल में निश्चय ही कठ, मल्ल आदि गणों में अग्रेय गण के लोग आत्म रक्षा के लिये कुछ मात्रा में अवश्य पहाड़ों की ओर बढ़े होंगे और उन्होंने काँगडा, चम्बा व जम्मू के भीतरी क्षेत्रों को अपना अड्डा बनाया होगा। कालान्तर में ये लोग स्थानीय किरात लोगों में समाहित हो गये अथवा वे आर्य वर्णो के अंग बने यह खोज का विषय है।

लगभग दो शताब्दी यवनों का वर्तमान पंजाब, पाकिस्तान व अफगानिस्तान के क्षेत्र में शक्तिशाली राज्य रहा। कालांतर में यवन र ज्य को पश्चिम से आने वाले गज्जर व शकों ने व भारत के आर्य राजाओं ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया। खंडित यवन राज्य की यवन जनता पुनश्च अपनी सुरक्षा के विचार से हिमाचल के पहाड़ों की ओर मुड़ी। हिमाचल का पर्वतीय क्षेत्र यवन राज्य की सीमा पर ही तो था।

ईसा के जन्म से पूर्व ही यवन-लोगों के कुछ टोले यहां आ गये थे। यह कोई कालपनिक बात नहीं है। अनेकों इतिहास के विद्वान ने यह मत व्यक्त किया है कि चम्बा के भरमौर क्षेत्र के गडरियों का कुछ भाग चम्बा व मण्डी नगर के खत्री समुदाय के लोग

व कुल्लू के भीतरी भागों व शिमला क्षेत्र के कुछ भागों में कुछ लोग अपने कद, काठ, आकृति, रूप व बोलने के विशिष्ट ढ़ंग से अलग पहचाने जा सकते हैं अर्थात् उनका कद लम्बा शरीर स्थूल व भरा-भरा, रंग जाफ़रानी-सफेद, आँखों का रंग नीला व बालों का रंग भूरा है। इन लोगों का सम्बन्ध निश्चय हो आर्यों की यवन-शाखा से है। चम्बा के व मण्डी के खत्रियों व भरमौर के गद्दियों के गोत्रों में समानता है यथा मेहता, हांडा, मलहोत्रा, वैद्य, कपूर आदि।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि यवन लोगों में से कुछ यहां आये और उनको आज भी पहचाना जा सकता है। हिमाचल प्रदेश के लगभग सभी नगरों में आज खत्रियों की महत्वपूर्ण संख्या है। इनका व्यवसाय व्यापार व नौकरी है। ऐतिहासिक काल में भी यह जाति व्यापार व राजाओं के दरबारों में नौकरी करती थी। यही कारण था कि राजाओं के कारीब रहने से यह जाति भूमि मालिकों की जाति बन गई थी। इस जाति का कोई राजा बाद के काल में रहा हो इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

हिमाचल की खत्री जाति में यवनों के अलावा शक व हुणों के वंशजों का होना भी निश्चित है। जो लोग छोटे छोटे कद के हैं, रंग उनका पीला या पीला गौरा है, आंखे भूरी या हल्की काली हैं, शरीर स्थूल है, आंखे दबी हुई व नाक चपटी है उनका सम्बन्ध हुणों या इ-हू-ची लोगों से रहा है, ये लोग उस जाति का अवशेष हैं। इन लोगों के उच्चारण की विशिष्टता से भी यह बात नोट की जा सकती है।

शक और हुण, कुषाण और इ-हु-ची जातियां भी भारत पर आक्रमण करने आईं। जब जीत गई तो मैदानी क्षेत्रों में शासक बन गई। हार गई तो उनका भी कुछ न कुछ भाग पहाड़ों की शरण में आया। शकों के नेता अम्लाट ने तो तक्षशिला से पाटलिपुत्र तक भयंकर नरसंहार किया था और अपने विचार से उसने पुरुष जाति का तो नाश ही कर दिया था। हुणों के सशक्त नेता मिहिरगुर ने भी नरसंहार का इतना व्यापक खेल खेला था कि वर्षों तक पुरुष नजर नहीं आते थे। परन्तु इन बर्बर जातियों की भी अंतर्भूति हो गई। ये भारतीय संस्कृति व समाज के अंग बन गये। शकों में से कुछ ब्राह्मण, कुछ क्षत्रिय कुछ वैश्य मान लिये गये।

हिमाचल प्रदेश के ब्राह्मणों व राजपूतों व वैश्यों में बहु संख्या इन शक लोगों से परिवर्तित लोगों की हो हैं। इसका कारण यह है कि कालांतर में जब शकों के अनेक स्थानों के राज्य छिन गये तो वे सुरक्षा के विचार से दूर पहाड़ों की ओर खिसक गये। शक द्वीप से आये शक द्वीप ब्राह्मणों का वर्णन भी ग्रथों में मिलता है। यहां आकर शक सामंतों को फिर राज्य करने का अवसर मिल गया।

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार हिमाचल प्रदेश के बड़े भूभाग में फैली खस या खश जाति वास्तव में शक जाति ही है। हिमाचल प्रदेश के कालांतर के राजवंशों से पूर्व

जो ठाकुर व राणा यहां पर राज्य करते थे वे मुख्यतः शक वंशी थे। राहुल जी के मलाणा जन पद के लोग किरात हैं। उन की बोली भी किरात लोगों की बोली है बाद के राज वंशों के लोग भी शक जाति से थे विशेषतया बर्म्मन। शर्म्मन व बर्म्मन शब्दों का सीधा सम्बन्ध शकों से है।

हिमाचल प्रदेश में कुनैत या कनैत जाति के लोग भी हैं। कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि कुनैत या कनैत शब्द कुलिंद या कुणिंद शब्द का विकृत रूप है। कुलिंद या कुणिंद महाभारत कालीन गण था जो शताब्दियों के गुजरने के साथ राजतन्त्र बन गया और अतत: अब तक सारे इतिहासकाल में से गुजरता हुआ कुनैत जाति के रूप में विद्यमान है।

कांगड़ा हमीरपुर व ऊना क्षेत्र में घिरथ नाम की जाति बहुसंख्यक है। यह जाति प्राचीन किरात जाति का अवशेष है, राहुल सांकृत्यायन समेत कई अन्य विद्वानों का यही मत है। इस जाति का प्राचीन ऐतिहासिक स्थल किरग्राम बताया जाता है। वर्तमान बैजनाथ का पुराना नाम किरग्राम है।

बोहरे या महाजन भी हिमाचल प्रदेश की एक प्रमुख जाति है। इनके ऐतिहासिक मूल की खोज की आवश्यकता है। हिमाचल से बाहर के अग्रवाल अपने आप को आग्रेय गण का वंशज मानते हैं। सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर इनका सम्बन्ध यक्ष जाति से जोड़ा जाता है। यहां के महाजन अपने आपको गुप्ता भी कहते हैं और भारत के गुप्त वंश से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। कुछ भी हो यहां के बोहरों या महाजनों का सम्बन्ध भी अन्य अनेक जातियों की तरह शकों, हुणों, यवनों से बने हिन्दुओं की एक या दूसरी शाखा से है, जिसमें किसी पुराने गण या गोत्र की कड़ी भी मौजूद होगी।

हिमाचल प्रदेश में सारे देश की तरह वे क्षत्रिय नहीं मिलते जिनका वर्णन ऋग्वेद आदि में है। यहां तो दो प्रकार के लोग मिलते हैं एक प्रजा राजपूत एक राजा राजपूत राजा राजपूत तो सारे देश की तरह वे कहलाये जो शक्ति सम्पन्न सामंत थे। प्रजा राजपूत वे थे जो उनके सम्बन्धी थे परन्तु राजा नहीं थे। ये लोग यहां मियां भी कहलाते हैं। यहां के राजाओं को निम्न जाति का कहने का किसी में कोई दम नहीं था चाहे वे राजपूत थे या नहीं थे।

राजपूतों की जाति के बारे में तो इतिहास प्रसिद्ध तथ्य ही यह है कि भारत की विभिन्न शासक जातियों को क्षत्रियों के समकक्ष बनाने के लिए आबु-पर्वत (राजस्थान) में महायज्ञ किया गया और अग्नि देव की साक्षी में चार राजपूत जातियां मानी गई- परमार, परिहार या प्रतिहार, चालुक्य और चौहान। मध्यकाल में इन अथवा इनकी समकक्ष जातियों के लोगों के हाथों में ही राज्य रहा।

हिमाचल प्रदेश के गुज्जर उसी गुर्ज्जर जाति के वंशज हैं जो ईसा के जन्म से पूर्व कुछ समय पहले अथवा जन्म के बाद तक कई वर्षों तक भारत में एक आक्रमणकारी

जाति के रूप में आई। पहले जीत गई और राज्य स्थापित कर लिये। बाद में हारी तो पहाड़ों की ओर चली आई और पशुपालन के अपने पुराने धन्धे में लग गई। आधुनिक युग के इतिहासकारों का कहना है कि यह जाति सोवियत रूस के एक राज्य जार्जिया से भारत आई थी। रूसी भाषा में जार्जिया को गुर्जी कहा जाता है। गुर्जी से ही गुर्ज्जर व फिर गुज्जर शब्द की रचना हुई। खोजों से पता चला है कि हिमाचल के गुज्जरों की बोली के कई शब्द जार्जियाई भाषा से मिलते हैं।

मुसलमान गुज्जर भी हिन्दुओं से मुसलमान बने हैं। कई जातियों के घुमक्कड़ पशु पालक जब पंजाब आदि में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया, सुरक्षा के विचार से मुसलमान बन गये। खोज करने पर पता चलता है कि कई पीढ़ियों के बाद भी मुसलमान गुज्जरों ने अपने हिन्दू कुनबे, परिवार, गोत्र या जाति की याद रखी है।

एक और जाति है, लबाणें। लबाणों का कहना है कि वे मूल-रूप में पशुपालन व पशु विक्रेता हैं और अपने इस व्यवसाय में रहने से प्रायः घुमक्कड़ जीवन बिताने चले आए हैं। इनका सामाजिक ढांचे में स्थान ठीक वैसा ही है जैसा कि हिन्दू गुज्जरों का अर्थात् राजपूतों के समकक्ष।

इन मुख्य जातियों के अतिरिक्त अन्य जातियां व्यवसायगत हैं यथा लुहार, चमार, तरखान, नाई, धोबी, हेसी, दसाली आदि। ये सब जातियां बहुत पुराने समय से यहां हैं अथवा धीरे-धीरे बढ़ी इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।

इन जातियों की बनावट हिन्दू वर्ग-व्यवस्था के अनुरूप कब हुई, यह भी कुछ ठीक नहीं बताया जा सकता।

इतिहास काल की जातियों में मुसलमान भी आते हैं। जब भारत के कई भागों में व अंततः केन्द्र में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया तो राज्य के प्रभाव के कारण व कई बार बादशाहों या उनके सूबेदारों से टक्कर हो जाने पर कुछ मुसलमान भी पहाड़ में आ गये। कई केन्द्र के प्रतिनिधी बन कर आये। कई पहाड़ी राजाओं के दरबार में नौकरी करने आ गये। धर्म परिवर्तन द्वारा भी कुछ लोग मुसलमान बनें व यहां बस गये। मुसलमानों में दस्तकारी का काम करने वाले अधिक लोग थे।

एकाध सैंकड़ा साल पहले हिमाचल प्रदेश में कुछ लोग इसाई भी बनें। इसाई हिन्दूओं में से भी बने व मुसलमानों में से भी। परन्तु इनको मात्र एक जातीय ईकाई के रूप में ही देखा जा सकता है इनकी संख्या कोई अधिक नहीं है।

इस संक्षिप्त विश्लेषण में जाति की परम्परागत धारणा को यथावत बताये नहीं रखा जा सका। प्राचीन जातियां वास्तव में गोत्र या एक रक्त पर आधारित जन समूह थे यथा किन्नर, यक्ष, नाग, आर्य आदि। बाद की इतिहास कालींन जातियां जन-समूह तो थे परन्तु उनका गोत्र व रक्त एक ही नहीं रहा यथा द्दी, खत्री, ब्राह्मण, राजपूत

सोमसी

खस या खश, कुनैत या कनैत सब में जातिय समन्वय हुआ। परन्तु उनका नया सामाजिक स्वरूप पुनश्च जातीय कहलाया क्योंकि उन्होंने एक सी साँस्कृतिक परम्परा का नियम अपना लिया।

बौद्ध, मुसलमान व ईसाई तो जातीय समूह न रह कर अलग प्रकार की धार्मिक-सांस्कृतिक परम्परा के प्रतीक बन गये। सांस्कृतिक जातीय विकास क्रम में यह एक नया पड़ाव था। ये सांस्कृतिक-जातीय जनसमूह दूसरे लोगों के से व्यवसाय करने के बावजूद भी दूसरे लोगो से अपने आप को अलग मानते थे। परन्तु वास्तव में यह अलगाव आरोपित व बनावटी था।

इस प्रकार हिमाचल प्रदेश की जातियों का हमें थोड़ा सा ऐतिहासिक परिचय प्राप्त हो जाता है।

हिमाचल प्रदेश की प्राचीन जातियों का भौगोलिक आर्थिक राजनैतिक कारणों से रूपान्तरण हो गया। समन्वय अथवा टकराव से जो नई परिस्थिति तैयार हुई उसको लोगों ने स्वीकार किया।

ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक, चूंकि आक्रमण कारियों व फिर सत्ताधारियों ने हिन्दू धर्म अपना लिया अतः हिन्दू वर्ण व्यवस्था में सन्मान व समानता की मांग कर के सब को विवश कर दिया कि वे बड़े नियमों का बन्धन न डालें। अतः हिमाचल प्रदेश में वर्ण-व्यवस्था का रूप उतना कड़ा नहीं रहा जितना अन्यत्र था।

हिमाचल प्रदेश में इतिहासकाल की जातियाँ हुई :—

1 ब्राह्मण, राजपूत, खत्री, बोहरे, मियें आदि। ये सब हिन्दु वर्ण-व्यवस्था के दायरे में मिलती है। परन्तु ये जातियाँ भी सम न्वत हैं।

2 घिरथ, गद्दी, गुज्जर लवाणे। इन जातियों पर वर्ण-व्यवस्था का कुछ प्रभाव है परन्तु इनके अपने स्वतत्र रिवाज भी है। इसी प्रकार कनैत व खस जातियों की स्थिति है। सामाजिक स्तर के तौर पर ये जातियां राजपूतों के समान रही है।

3 लुहार, चमार, जलाहा, तरखान आदि जातियाँ हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के सांस्कृतिक ढांचे से बाहर रह कर भी, इसी की अग मानी गई हैं।

4 बौद्ध जो कि विशेषतः लाहौल कुल्लू व किन्नौर में है भी प्रायः दो श्रेणियों में पाये जाते है कुछ राजपूतों के समकक्ष कुछ न्यून।

5 मुसलमान व ईसाई भिन्न संस्कृति के मानने वाले है।

परन्तु ये समूचे जाति समूह हिमाचल प्रदेश में सदियों से शांति व संजीदगी से रहते आये है। इनमें कभी भातृघाती युद्ध नहीं हुये न ही अधिक भेदभाव रहा।

इन इतिहास कालीन जातियों के अतिरिक्त अब हिमाचल प्रदेश का सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचा और भी विविध हो गया है, इस की चर्चा फिर करेंगे।

१९७/१० धनेहड़ा, मण्डी (हि०प्र०) १७५००१

हिमाचल-लोक-नाट्य स्वरूप एवं परम्परा

–शशी कांत शास्त्री

व्यक्ति या समूह का अपने देश से सम्बन्ध कुछ ऐसा होता है जैसा उनका अपनेपन तथा अपने माता-पिता से, जिसकी गोदी में बैठकर व्यक्ति या व्यक्ति समूह विकसित होता है। अपनी मां, अपने जन्म ग्राम, अपने घर और अपने पड़ौस के माध्यम से ही हम अपने प्रदेश या देश को पहचान सकते हैं। हम अपने निकटस्थ वातावरण से ही समूचे क्षेत्र या देश के भूगोल, इतिहास कला और लोक जीवन के प्रति रुचिशील हो जाते हैं। अपने क्षेत्र के विगत उसकी श्रेष्ठ परम्पराओं, उसके उज्ज्वल और उत्कृष्ट सांस्कृतिक पक्षों और उसकी जीवन विधि एवं रीति-नीति की जानकारी देश भक्ति का संवर्धक होता है।

आज भी जिस देश में कला का लोक जीवन से गहरा सम्पर्क बना हुआ है वहां के लोक नृत्य एवं लोक गीत, वहां की संस्कृति के अच्छे प्रतीक हैं। यही लोक नृत्य जब लोक जीवन के सम्पर्क को खो बैटते हैं, और उनको लोकरंजनात्मक गुण कम होने लगते हैं तो वे कुछ ही लोगों की सम्पत्ति बन जाते हैं। अतः यदि हमें अपनी लोक संस्कृति को जीवित रखना है तो इन लोक कलाओं को जीवित रखना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उनमें जनता के प्राणों का सच्चा स्पन्दन है। हिमाचल प्रदेश जैसे दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में जहां जीवनोंपार्जन अत्यन्त कठिन है, लोक रंजन के साधन सफलता से उपलब्ध नहीं, लोक कलाओं के अनेक रूप अभी तक मूल रंगीन, सम्पन्न और समृद्ध रूप में विद्यमान है। हिमाचल प्रदेश के सभी लोक नृत्य व्यवसायिक नृत्य न होकर जातीय नृत्य हैं। इसलिए इनमें लौकिक और सांस्कृतिक पक्ष अधिक है। इनमें आज भी यहां के पर्वतीय जीवन की आत्मा का निवास है। यहां के लोक जीवन को सादगी आनन्दानुभूति तन्मयता दक्ष शारीरिक अभ्यास का अपूर्व परिणाम मिलता है। जयशकर प्रसाद ने एक जगह भारतीय कृषक का सजीव चित्र इन पंक्तियों में खींचा था : –

कठिन जेठ की दोपहरी में तप्त धूलि में सन।
कृषक तपस्वी तप करते है तप से स्वेदित तन ॥

हिमाचल-वासियों का ग्राम्य जीवन भी इतना ही कठिन, कठोर और रूक्ष है। फिर भी यहां के परिश्रमी पहाड़ी लोग अपने सुमधुर लोक गीतों और लोक नृत्यों द्वारा मुरझाये हुए प्राण स्रोत को हिमालय की गोद में अठखेलियां करती हुई पावन गगा मैय्या

की धारा समान उल्लासमय और नन्दनवन के कल्प-वृक्ष की तरह सबसे सुख और आनन्द बिखेरते हैं। प्रकृति समान सरल हिमाचल के युवक और युवतियां बाल्यकाल से ही जैसा वृद्धों को करते देखते हैं, उसी परिपाटी को अपने स्वभाव में सम्मिलित कर लेते हैं। इसी तरह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हिमाचल के लोक नृत्य आगे बढ़ते रहे है। और उनमें समय-समय पर परिवर्तन, संशोधन और रोचकता का विकास होता रहा है। चूंकि हिमाचल के लोक नृत्य किसी विशेष शास्त्रीय नियम से बंधे हुए नहीं हैं, लोक-नृत्य अत्यन्त सरल सरस और हृदयग्राही हैं। हिमाचली लोक-नृत्य के गीत इन्हें चार चाँद लगा देते हैं। निःसन्देह लोक-नृत्य और गीत का जन्म साथ साथ संघर्ष श्रम साधनों के अवसर पर दिखाई जाने वाली भावमयी सभी मुद्राओं के उन चरम क्षणों में हुआ जब जीवन का सौंदर्य जाग उठा और गीत फूट पड़े। चिरकाल से उदय और प्रयोजन के कारण, हिमाचल के लोक नृत्य गीत अभिन्न अंग रहे है। और पर्वतीय सामाजिक जीवन का सजीव और प्रेरणात्मक बनाते हुए ये लोक नृत्य लोक गीतों से विभूषित है। इनका सरल प्रवाहमय संगीत नृत्य की चाल को करना सौष्ठव प्रदान करता है। हिमाचल प्रदेश के बिभिन्न भागों में प्रायः विभिन्न लोक नृत्य प्रचलित है इसी प्रकार लोक नृत्य के साथ गाये जाने वाले लोक गीत और वेशभूषा भी विभिन्न होते हैं। इनमें से कुछ नृत्यों में केवल स्त्रियाँ और कुछ में केवल पुरुष हो नाचते हैं। परन्तु ऐसे भी लोक नृत्य हैं जिनमें केवल स्त्री पुरुष दोनों ही नाचते हैं। इनमें अधिकतर सामूहिक नृत्य हैं। प्रत्येक लोक नृत्य के साथ गाये जाने वाले नृत्य गीत की भाषा शैली छन्द, धुन, लय इत्यादि में भी भिन्नता है। हिमाचल के लोक नृत्यों का आधार, यहां की प्रकृति से गहरा सम्बन्ध होने के कारण उनके लोक नृत्य प्रकृति के अनुरुप ही सुन्दर हैं जिनमें विविधता और रंग का वैभव प्रदर्शित होता है। मानव इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान होता था। नृत्य एक प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान बन गया था। चूंकि उन दिनों सामूहिक जीवन में धर्म की महान भूमिका रही इसलिए नृत्य भी राष्ट्रीय जीवन का विशेष अंग रहा है प्राचीन भारत में नृत्य भगवान शिव नटराज की देन समझा जाता रहा है। परम्परा के अनुसार शिव और पार्वती ने नृत्य की दो महान शाखाओं ताण्डव एवं लास्य का संचार किया और संत महात्माओं को शान्ति प्रदान की।

हिमाचल की कला परम्परा का निःसन्देह शेष भारत से गहरा सम्पर्क रहा है और इस ने उसे आत्मसात किया है। समय के थपेड़ों ने इन्हें बरबाद करने के लिये कोई कसर शेष नहीं रखी, परन्तु फिर भी यह जीवित रह सकी है, तो एक बात स्पष्ट है कि इसकी नींव सुदृढ़ है और लोक जीवन से इसका अटूट सम्पर्क सदैव बना रहा है। स्वतन्त्रता उप-रान्त प्रदेश में लोक परम्परा को सुरक्षित रखने की दिशा में कुछ कदम उठाये गये है। जैसे प्रत्येक राष्ट्रीय एवं स्थानीय मेलों और युवा-उत्सवों में लोक नृत्यों का प्रदर्शन एवं सरकार द्वारा प्रोत्साहन। फिर भी लोक नृत्य परम्परा को आज सरक्षित रखने और उसे विकसित रूप देने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय जीवन में जो सुन्दर है श्रेष्ठ है,

उसकी उपेक्षा नही की जानी चाहिए। उसको तो संरक्षण एवं प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए ताकि राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने वाली यह परम्पराऐं सप्राण होकर राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ कर सकें।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्याः व्यैलताः,
युदयन्ते यस्माक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सानो भूमिः प्राणदत्तां सवत्नाम् असपत्नं मा पृथिवी कृणोतु वेद ॥

जननी-तेरे वीर पुत्र जब राष्ट्र गीत हैं गाते
करते नृत्य मोद सदमाते उत्सव नित्य रचाते
विविध प्रांत भाषा के भाषी लोक-लोक के वासी
रण भेरी सुन मातृभूमि की रक्षाहित बलि जाते।

लोक नृत्य आत्म प्रेरणा से प्रस्फुटित हो लोक मानस की कल्पना और इच्छा से कलात्मक और भावात्मक रूप धारण कर जातीय एंव राष्ट्रीय संस्कृति की आनन्दमयी किरणों से युगों-युगों से लोक जीवन के अंधरे कोनों को प्रकाशित करते रहे है और करते रहेंगे।

राजकीय माध्यमिक विधालय (हारसी)
जिला कांगड़ा (हि० प्र०) १७६०८१

बुशैहरी लोक गीत एक सांस्कृतिक रहस्य

—कृष्ण चन्द कायथ

समय की परिवर्तन शील गति बुशैहरी प्रागैतिहासिक संस्कृति के अनुपम सुन्दर आकार पर अपनी छाप न डाल सकी, बल्कि उल्टे ही उस अनुमय मनोहर पर्वतीय उत्पत्ति के कवच रूपी संरक्षण से सुरक्षित रहती आई। तो अपनी सांस्कृतिक अनुभूति से आज भी अलंकृत है। यों तो सर्वत्र हिमाचल प्रदेश अपने लोक गीतों की सारगर्भित विचार धारा से राष्ट्रीय लोक साहित्य जगत में एक अनुपम उदाहरण कायम किये हुये हैं फिर भी आज की शोध प्रणाली के प्रगतिशील वेग से निखर कर अधिकतर हिमाचली लोक साहित्य में पर्वतीय लोक गीतों का अधिक महत्व है। जहां एक ओर अखिल हिमाचली लोक गीत अपनी वर्चस्विता को लिये हुये हैं वहा दूसरी ओर बुशैहरी लोक गीत अपने प्राचीनतम वेद पुराणो के आख्यानों के रस से परिपूर्ण है जिसकी तुलना विश्व के उच्चतम कवितामय साहित्यों की वस्तु भूमि से की जा सकती है। यों तो शोध कर्ता अपने साहसिक कार्य में सतत् कार्यरत है फिर भी बहुत से लोक गीत अभी तक आकाशवाणी और लेखन प्रक्रिया से अछूते पड़े हुये हैं। बुशैहरी गीतों में भारतीय संस्कृति कि एक अनुपम छाप मिलती है जो प्राचीनता की ओर नवीनता को एक दम से आकर्षित कर देती है जैसे कि :—

ऊंचे ऊचे शिखर मथी,
शुकलै हीऊं रां ढ़ेरा।
तैथा पाछी लो सोंगिया,
शिवा पार्वतो रा डेरा।

अर्थात! पर्वतोय प्रेमी अपनी प्रेमिका को सम्बोधित करते हुए उसे दूर स्थित चमचमाते हुये हिम मण्डित तुंग श्रृगों को अपनो अगुली से इंगित करते हुये कहता है हे मेरी प्रेयसी इन ऊचे-ऊंचे हिम शिखरों के पोछे हमारे प्रणय अराध्य शिव पार्वती का निवास स्थान है इसके साथ ही आगे कहता है।

सचे समझिया कोउरे,
मौना रो सोगियां बैथो।
भूलो नो कदमौ,
फिरो न कदी हटा लो तेरो।

अर्थात ! हे मेरी प्रेयसी तू जो कुछ भी मेरे प्यार में करने जा रही है वो तू सब सोच समझ कर कर ! अन्यथा यह भी सोच ले आवेश में उठा कदम फिर से वापिस हटाना हम दोनों के लिये मुश्किल होगा। अर्थात प्रणय में वह हर कार्य अपनी गति से सतत् आगे बढ़ता ही रहता है। चाहने पर भी पीछे नहीं हटाया जा सकता।

मेरेया सोंगिया का तैई,
लो ऐणु ऐणु सोंचो।
फूला री बाडिया,
मैंईलो देखिया फूलड़ ऊंचो।
भगवती रा गन्ठना मंदिरा,
शिवजी रा अनोखा थाना।
तू मेरो सांगिलो
तेरा हाथा इजज़ता बोणा।

अर्थात ! प्रेमिका अपने प्रेमी को अपने दृड़-सकंल्प के साथ उत्तर देती है कि हे मेरे प्रिय यह तान मुझे क्यो दे रहे हो मैंने फूलों की वाटिका से अपने लिये चुनकर सुन्दर पुष्प चुना है यानि तोड़ा है। मुझे हैरानी है कि तेरे मन के भीतर इस प्रकार से संशय किस तरह प्रेरित हुआ। जरा सोचिये हम दोनों सामने प्राचीनतम शिव मन्दिर का अनुपम सौन्दर्य भी आप के मन की शक भरे विचारो से कुछ धुमिल सा पड़ता दिख रहा है तू मेरा अराध्य है और तेरे हाथ में ही मेरी इज्जत है।

ऐ बोल् देवता,
अम् मन्जालो सोगिया पाँचा।
पुराना ऐस देऊरा,
आफिया देअलो महेशवरा वाँचा।

अर्थात ! हे मेरे प्रेमी हमारे प्रेम के सच और झूठ के इन्साफ के लिये यह देवता ही पंच का काम करेगा इस प्रागेतिहासिक मन्दिर में बैठ कर हमारे प्रेम के सच और झूठ का निर्णय देवता महेशवर ही करेगा।

मेरीया नांया न एतेरों,
दे मला शरापा।
सदा तू मेरे थे,
छूटयां रो नाता पाया।

ढोले चा ला ढ़ोंक्ड़,
सूके जा ला दरियारू पानी।
च्टे जा लो स्वंगा,
त भी न छूटा ले मुखां नाणे।

अर्थात ! हे मेरी प्रेमिका तू मुझे इस प्रकार से अभिशाप न दे तू सदा से अर्थात पूर्व जन्म से मेरी थी। अब भी मेरी हो रहेगी। मैं तेरे आगे प्रतिज्ञा करता हूं कि ऊंचे-ऊंचे पहाड़ भले ही गिर जाये, बहते दरिया भले ही सूख जाये, आसमान क्यों न टूट जाये, किन्तु तेरा मेरा प्यार फिर भी कभी न टूटेगा।

इस प्रकार से ऐतिहासिक मर्यादा से परिपूर्ण हमारे बुशैहरी लोक गीत अपनी छवि को निखार कर रखे हुये है। जो प्राचीनता के गौरवमय आर्दशों को अपने मधुर एवम् सुरमय सुरलहरी में पिरोये हुये है। जिन के श्रवणमात्र से ही पहाड़ी पगडण्डियों पर चलते-चलते राही एक बार रुक कर आराम की सांस लेते है। उनके भीतर एक प्रबल शक्ति का प्रवेश हो जाता है। जो उनके मनोबल को उन्नत बनाता है।

हिमाचल का प्राकृतिक दृश्यों से अलंकृत समस्त प्रदेश एक अदृश्य उद्वेग से भरा पड़ा है। जो यदा कदा लोक गीतो की सुन्दरतम स्वर लहरियो में प्रकट होता है। जो प्रदेश और देश के श्रमिको किसानो और बुद्धिजीवियों के जीवन में उस युग की ओर बढ़ने की प्ररेणा देता है। जिस युग में जमाने का बदलता हुआ रूप साकार प्रतीत होता है जिस में व्यास मुनि की धर्मनीति और कालीदास के प्रेमवाद को छाप दिखने लगती है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब प्रदेश का हर शिक्षित वर्ग निष्पक्ष भाव से गांव-गांव पहाड़ पहाड़ में जा कर, घूम घम कर अपने अथक परिश्रम से धूल धूसरित संस्कृति को झाड़ फुकार कर उस से लोक गीतो कि उस स्वर लहरी को खोज निकाले जो युगों-युगों से अपने चाहने वालो को वायु के वेग में पेड़ों की झूलती टहनियो के इशारो से और झरनो की झर झर झन्कारों से, मन्दिरो के बजते नगाड़ो से अपनी ओर आने के लिये प्रेरित करती है। परन्तु हम इतने निष्ठुर बनते जा रहे है जो अपनी खोई लोक गीत सम्पदा को पुनः अर्जित करने से हिचकिचाते है। और पाश्चात्य Disco (डिस्को) नामक भ्रष्ट गीतो से मिश्रित नृत्य की ओर आकर्षित होते जा रहे है। क्या यही नवयुवको के शोध का प्रत्यक्ष प्रमाण होगा? कदापि नहीं। हिमाचल का नवयुवक अपनी आलौकिक प्रतिभा से युगों-युगों तक हिममणि की तरह आलोकित होता रहेगा।

अरैन बिला, अपर कैथू
नियर स्नो व्यू लॉज शिमला

नाजो

तारा शर्मा

सृष्टि की रचना ही पुरुष और स्त्री के पृथ्वी पर अवतरित होने से हुई है और इस धरा पर अवतरित हुआ हर पुरुष व स्त्री अपने दाम्पत्य जीवन का सुख भोगना चाहता है जिससे संसार की उत्पति होती है। बहुत समय पहले की बात है नाजो एक सैनिक की पत्नी होती है। भारतीय रुढ़ियों के अनुसार बालिका का विवाह माता-पिता द्वारा निश्चित किया जाता है अतः शादी से पूर्व बालिका के मन में अपने भविष्य के प्रति नये-नये विचार, दाम्पत्य जीवन के प्रति काल्पनिकता व सुहाने सपनों का एक तांता सा लग जाता है। इन्हीं परिस्थितियों में नाजो का ब्याह एक सैनिक से हो जाता है। तरह-तरह की इच्छाओं को पालती हुई, कल्पनाओं के प्रांगण में विचरण करती हुई नाजो एक नये संसार की रचना करना चाहती है परन्तु विधि की विडम्बना को कौन पहचान पाया है, कौन जानता है कि जीवन में सब कुछ पाने के उपरान्त भी सब कुछ खोना पड़ता है। इस सबकी प्रतीक है इस लोक गीत की मुख्य नायिका-नाजो।

विवाहोपरान्त सैनिक जिसे लोक कवि ने "कान्त" के नाम से विभूषित किया है, ब्याह होने के तुरन्त पश्चात ही अपनी नौकरी पर चला जाता है और बेचारी नाजो दाम्पत्य सुख के अभाव में दिन रात बेचैन रहने लगती है। भाग्य की विडम्बना ही कहें कि नाजो का कन्त 12 वर्ष के उपरान्त अपनी नौकरी से वापिस आता है और वह नाजो जिसने मन में कल्पनाओं के नीड़ की रचना की थी मानो स्वप्न बन कर टूट गयी।

आपत्ति कोई भी हो, वास्तव में अवश्य ही हृदय विदारक होती है और विशेष तौर से स्त्री अबला होने के कारण आपत्ति के समय सहारा चाहती है। सास, ननद व जेठानी के ताने सुन-सुन कर नाजो के कान पक चुके हैं। दिन रात नाजो घर में बड़ों-बूढ़ों व छोटों के हुक्म बाजी का पालन करते वह सास जेठानी के ताने सुन कर भी बिजली के पंखे की भान्ति व्यस्त रहती है और घर का प्रत्येक व्यक्ति उस पंखे की गति को अपनी स्वेच्छानुसार कम या ज्यादा करने के लिये पूर्णरूप से स्वतन्त्र है। निराशा व असन्तोष की प्रतीक बेचारी नाजो मन में आत्महत्या की ठान लेती है। ऐसी दुखद परिस्थितयों में नाजो का देवर उस से सहानुभूति जताता है और देवर की सहानुभूति मानों भाभी (नाजो) को उस के प्रेमपाश में बान्ध देती है दोनों के हृदय में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है देवर अपनी भाभी

के दिल की बात जान लेता है आखिर परिणाम यह होता है कि देवर भाभी के प्रेम सम्बन्ध शारीरिक सम्बन्धों में बदल जाते हैं। अब नाजो के चेहरे में एक चमक है, होंठ जो शमशान की तरह खामोश थे, अब उन पर मुस्कान है। नाजो की निराशा मानो आशा का दामन लिए, हो परन्तु भाग्य ने इसे भी स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और 12 वर्ष के उपरान्त जब नाजो का पति यानि "कन्त" घर आता है तो अपनी पत्नी के गले में एक सुन्दर हार देखता है जो कि उसको देवर ने दिया है। हार को गले में देख कर कन्त सन्देह का शिकार हो जाता है और वह हार की जांच पड़ताल करने के लिये घर के सभी सदस्यों से पूछताछ करता है। अतः लोक कवि ने उसे इन शब्दों में उद्यत किया है :—

बारह जे वरसे कन्त घरे जो आया,
सच-सच देया गलाई, नाजो जो गले माला
किन दितिया ॥

सबसे पहले अपनी मां के पास जाता है और हार के बारे में पूछता है जिसे लोक कवि ने यूं कहा है :—

रोटी पकांदी मावे तू मेरिये, सच-सच देयां गलाई,
नाजो जो गले माला किने दितियां ॥

मां कहती है :—

हाऊं क्या जाणू पुत्रा तू मेरेया,
आइ आपणी भाभी जो पूछ,
नाजो जो गले माला किन दितियां ।

देवर भाभी के पास जाता है और पूछने लगता है जिन्हें लोक कवि ने बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया है :—

ओबरु जे लिपदी भाभीए तू मेरिये,
सच सच देयां गलाई,
नाजो जो गले माला किन दितियां,

भाभी पुन· उत्तर में कहती है :—

हाऊं क्या जाणू देवरा तू मेरेया,
जाई आपणी बोबो जो पूछ,
नाजो जो गले माला किन दितियां ।।

सन्देह की आग में जलता हुआ कन्त अपनी बहिन के पास जाता है और उस से हार के बारे में पूछता है जिसे लोक कवि ने यूं कहा है :—

गऊं चरांदी बोबो तू मेरिये,
सच-सच देयां गलाई,
नाजो जो गले माला किन दितियां ।।

कन्त की बहिन भी इस भेद के विषय में अनभिज्ञ होती है और उसे बड़े सुन्दर ढंग से सलाह देती हुई कहती है कि देखो भैया यही अच्छा होगा कि इधर-उधर पूछताछ करने से आप सीधे अपनी नाजो से पूछ लो और यह मेरा विश्वास है कि वह कभी भी झूठ नहीं बोलेगी। अतः बहिन की बात सुनकर कन्त नाजो के पास जाता है और उससे पूछता है जिसे लोक कवि ने इन शब्दों में उद्धृत किया है :—

कपड़े जे सींदी नाजो तू मेरिये,
सच सच देयां गलाई,
नाजो जो गले माला किन दितयां ।।

भारतीय संस्कृति के अनुसार पत्नी सदैव ही पति को परमेश्वर मानती रही है और भारतीय परम्परा का पालन करती हुई नाजो अपने पति को सच बताने पर मजबूर हो जाती है। नाजो कहती है :—

झूठ गलांदे नरका जो जांदे,
सच्चया दे हुँदे बेड़े-पार,
नाजो जो गले माला देवरे दितियां

अब कन्त के क्रोध की कोई सीमा नहीं रहती और वह एकदम अपने कमरे से अपनी बन्दूक को उठाकर अपने छोटे भाई को मारने के लिये तैयार हो जाता है जिसे लोक कवि ने इन शब्दों में कहा है :—

लेआओ मेरा घोड़ा, लेआओ मेरा कोड़ा,
लेआओ मेरी ढाल तलवार, छोटा भाई
बडी सुटणा ॥

कन्त के क्रोध को देखकर नाजो कांप उठती है और यूं भी अतीत से नारी को त्याग की मूर्ति माना गया है, जीवन में किसी व्यक्ति विशेष के लाभ के लिये नारी अपने जीवन का हर सुख, हर खुशी का त्याग कर देती है। नारी का यह त्याग क्या कम है जो कभी माँ-बाप के लिए, कभी सास-सुसर के लिये, कभी पति के लिये और कभी अपनी सन्तान के लिये। सदैव अपने दुःख में दूसरों के सुख को टटोलती हुई अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देती है। नारी का धर्म किसी की तबाही का कारण नहीं बनता, वह किसी का सर्वनाश करने में अपना गौरव नहीं समझती। यही कारण है कि निर्माण की प्रतीक नाजो अपने कर्तव्य को नहीं भूलती। और जब उसका कन्त अपने भाई पर वार करता है तो नाजो उसके आगे आकर स्वयं निशाना बन जाती है और मरने से पहले कुछ ऐसे शब्द बोलती है जो वास्तव में हृदय विदारक है और ऐसा आभास होने लगता है मानो वह नारी पृथ्वी की तरह महान है जो अपने पति और देवर के बीच भ्रातृत्व के सम्बन्ध में दरार नहीं डालना चाहती अतः मरणासन्न पड़ी नाजों अपने कन्त से कहती है कि भाईयों की जोड़ी हमेशा सलामत होनी चाहिए क्योंकि यह जोड़ी बहुत भाग्यवान माता-पिता को ही प्राप्त होती है अतः जिस कारण यह झगड़ा उत्पन्न हुआ है सब से पहले उसी को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। ऐसा कहकर नाजो तुरन्त अपने प्राण त्याग देती है। अतः लोक-कवि ने बड़ व्यवस्थित ढंग से नाजो द्वारा अन्तिम क्षणों में कहे शब्दों का वर्णत किया है :—

भाईयाँ री जोड़ी सलामत लोड़ी,
बडी देणी बगानी बार,
गले माला देवरे दितियाँ ॥

आशुलिपिक, कृषि विभाग
हि०प्र०, शिमला-।

सिरमौर के विस्मृत आन्दोलन-II

प्रो० रूपकुमार शर्मा

(पाठकगण उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत भाग I सोमसी के अक जनवरी 1981 में पढ़ चुके है इन्ही भूले विसरे जन आन्दोलन की शृंखला बद्ध कड़ी का दूसरा भाग प्रस्तुत है)

पालवी तहसील का जन आन्दोलन

रियास्त सिरमौर को 1866 में 12 बजीरियों को समाप्त करके चार तहसीलों का पुनर्गठन किया गया जिन में से पालवी भी एक थी जो आज तहसील रेणुका के नाम से जानी जाती है। यह प्रदेश सिरमौर के गिरी पार क्षेत्र में पड़ती है जो इस जिले का पिछड़ा हुआ क्षेत्र माना जाता है। इस क्षेत्र के लोग प्राचीन काल से ही भोले, सच्चे, कर्त्तव्य परायण व निर्भीक ही नहीं थे बल्कि उन्होंने राजा व उस के कर्मचारियों के अन्याय, अत्याचार व कुशासन के विरुद्ध समय-समय पर आवाज को बुलन्द किया है। भले ही उनकी आवाज को शासन की सैनिक शक्ति ने दबा दिया किन्तु अन्याय-विरुद्ध संघर्ष की भावना कभी नहीं मिट पाई। वह कुछ काल के बाद फिर पनपी क्योंकि शहीदों की कुर्बानी कभी व्यर्थ नहीं जाती है।

यहां के लोगों ने चान्दपुर के रावत के अन्याय के विरुद्ध विद्रोह किया, सिंगा बजीर के अत्याचारों का बदला उसकी हत्या से लिया, होंकू रावत व उसके साथियों ने नाहन जाकर अन्याय और कुशासन के लिए शहीद हुए सिधुमियां ने अपनी टीकरी बचाने के लिए जान दे दी। इस सिलसिले की एक कड़ी पालवी का आन्दोलन है जो 1870-74 में राजा शमशेर प्रकाश के बन्दोवस्त कानूनी[1] के समय हुआ।

इस बन्दोवस्त के सर्वे का कार्य 1869 में शुरू हुआ। जबकि सभी अन्य 3 तहसीलों में यह बन्दोवस्त बिना किसी विरोध के सम्पन्न हुआ किन्तु तहसील पालवी में इस का घोर विरोध हुआ और पहले असहयोग आन्दोलन हुआ किन्तु बाद में विद्रोह में बदल गया। राजा ने शिमला हिल स्टेट के सुपरिन्टेंडेन्ट की सहायता से व आन्दोलनकारियों के विरुद्ध सेना भेज कर शक्ति से दबा दिया।

राजा शमशेर प्रकाश को अपनी रियासत में चल रहे कार्यक्रमों के लिए धन की आवश्यकता थी किन्तु उस समय राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमिकर था जो पांच रूपये

1. बालगोबिन्द, लाइफ आफ राजा शमशेर प्रकाश 1901. पृ. 80

प्रति हल या केरा (एक रूपया प्रति 5 बीघा) और कातला (2 मन कच्चा अनाज प्रति हल) प्रणाली द्वारा लिया जाता था[2]। इस बन्दोबस्त के गुणों के बारे में जनमत तैयार नहीं किया गया उस समय राजा की इच्छा ही जन इच्छा होती थी। इस शक्ति और विशेषाधिकार का प्रयोग करके राजा ने यह बन्दोवस्त लोगों पर थोपा। लोग पहले ही करों के बोझ से दबे हुए थे। इन करों का बोझ तहसील पालवी पर सदा भारी रहा है। गिरी पार का प्रदेश विद्रोही की जन्मभूमि होने के कारण राजा व उसके कर्मचारियों का कोपभाजन रहा। दूसरी ओर स्वभाववश लोग अन्याय को सह सकने के विरूद्ध थे

इस आन्दोलन का कारण क्या था इसको ढूंढना कठिन कार्य है क्योंकि सरकारी तौर पर इसका जिक्र नहीं किया गया केवल बालगोबिन्द ने साहसिक कार्य किया। सर्वप्रथम उसने अपनी पुस्तक में इसका वर्णन किया तथा इसका कारण लोगो में अन्धविश्वास था कि लोहे की जरीबो से मापने पर उनकी भूमि का उपजाऊपन समाप्त हो जायेगा। अतः उन्होंने अछ्वू संग डाह् और प्रीतम लुधियाना वाले के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और चार वर्ष तक भूमिकर रोके रखा। तहसीलदार जीतसिंह का विरोध किया व नन्द लाल जो बन्दोवस्त कार्य का मुखिया था व उसके सहयोगियों को भूमि को मापने नहीं दिया। वे भाग कर नाहन चले गये। हजारों में एकत्रित होकर नाहन की ओर रवाना हुए। जब राजा शमशेर को इस बात का पता चला कि इतनी संख्या में लोग नाहन की ओर आ रहे हैं तो मुन्शी नन्दलाल को दोफिल्डगन व समस्त सेना देकर उनके विरूद्ध भेजा व स्वंय सुरक्षित स्थान में भाग कर छुप गया। रियास्त की सेनाओं ने आन्दोलन कारियों को पछाड़ दिया। इनके नेता शिमला हिल स्टेट्स के सुपरिनटेंडेन्ट से शिकायत करने शिमला पहुंचे पर राजा उसे प्रतिदिन की सूचनाएं भेजता रहता था और इस अन्दोलन को दबाने में उसका भी पूरा हाथ था। अतः उसने उनकी शिकायत सुनने की बजाय गिरफ्तार कर राजा सिरमौर के हवाले कर दिया। उनकी सम्पत्तिजब्त कर ली गई और मकानों को जला दिया गया[3]।

सिरमौर स्टेट गजेटियर 1904 ने तथ्य को मरोड़ कर इस का सारा दोष अछ्वू और प्रीतम की महत्वाकांक्षाओं तथा प्राचीन परम्परागत चौतरू सियाणा (कई सियाणों का मुखिया) की शक्तियों में कमी आने के भय से उन्होंने ऐसा किया[4]।

कंवर रणजौर सिंह ने अपनी पुस्तक में बालगोविन्द पर राजा के विरूद्ध निजी वैर-भाव का दोष लगाया है और बालगोविन्द का वर्णन झूठा व दोषपूर्ण बताया है क्योंकि रणजौर सिंह राजपरिवार से सम्बन्धित थे। अतः उनसे इससे अधिक की आशा भी नहीं की जा सकती थी[5]।

---

2. सिरमौर रियास्त की बन्दोबस्त रिपोर्ट (पांडुलिपि) 1930 पृ. 19
3. बालगोविन्द, पृ. 80
4. सिरमौर रियास्त गजेटियर 1904 पृ. 87
5. कंवर रणजौर सिंह, तारीख रियास्त सिरमौर, 1912 पृ. 310

तहसील रेणुका की असेसमैंट रिपोर्ट 1929[6] व रियास्त सिरमौर की बन्दोबस्त रिपोर्ट 1930-31 के अनुसार इस आन्दोलन का कारण कुछ चौंतरू व सियाणे के असन्तोष के कारण हुआ। शेष उनके हाथों में कठपुतली के समान किन्तु इसे दबा दिया गया व ऐसी सजाएं दी गयी कि उसे सुन कर रौंगटे खड़े हो जाते हैं[7]।

स्थानीय वयोवृद्ध व आन्दोलन कारियों के वंशजों से साक्षात्कार व अन्य स्रोतों से पता चलता है कि इस विद्रोह का कारण भूमिकरों में अत्यधिक वृद्धि की अफवाह, बन्दोबस्त कर्मचारियों का लोगों से दुर्व्यवहार, अपमान जनक स्वभाव, भ्रष्टाचार तथा दृढ़-धर्मी था। वैसे सिरमौर का इतिहास साक्षी है कि राजा के विरूद्ध आन्दोलन व विद्रोह के मुख्य तथा मूल कारणों में सरकारी कर्मचारियों का दुर्व्यवहार तथा हठधर्मी रही है। अगर मुन्शी नन्दलाल व तहसीलदार जीतसिंह लोगों पर रोब या धौंस जमाने के स्थान पर समझौता व उचित व्यवहार करते तो यह दुर्घटना टाली जा सकती थी। किन्तु उन्होंने लोगों के विरूद्ध राजा को भड़काया। लोग अपनी बात कहने शिमला सुपरिन्टेंडेंट के पास गये तो भी उन्हें न्याय नहीं मिला[8]।

घटनाएं :— जब लोगों को पता चला कि भूमि के कर में असहनीय वृद्धि की जा रही है और सरकारी व जमींदारी भूमि अलग करके लोगों का कर्मचारी भूमि में पशु चराना व घास काटना बन्द हो जाऐगा व कई जमीनें मपवा कर सरकार को दे दी जायेगी व उन्हें यह भी भय था कि जिन जमीनों पर अभी कर नहीं था उन पर भी कर लग जाएगा आदि बातों ने लोगों को सामूहिक कदम उठाने पर मजबूर कर दिया। अतः देवा मानल में स्थित शिरगुल देवता के प्रांङ्गण में चार चौतुरू सियाणे अर्थात् सगड़ाह, लुधियाना, चोकर, नोहरा व आठ सियाणे ने लोटे लूण (शपथ) खाई और निर्णय लिया कि जब तक उनकी बात नहीं मानी जाएगी सरकारी कर्मचारियों का बहिष्कार कर दिया जाएगा, उन्हें खाना, वेगार या अन्य किसी प्रकार का सहयोग न दिया जाए व भूमिकर भी न दिया जाए। इस प्रकार यह आन्दोलन बहिष्कार व असहयोग से आरम्भ हुआ। चार साल लोगों ने कर नहीं दिया। राजा शमशेर प्रकाश के लोगों के विरुद्ध कान भरे गये अतः समझौते के स्थान पर उन्होंने आन्दोलन कारियों में फूट डलवा कर कार्य सिद्ध करना चाहा। अतः नोहरा और चोकर के चौंतरू सियाणों को प्रलोभन के तौर पर लाया, व चेता में ऊपजाऊ भूमि दी गयी जहां उनकी जमीनें आज भी विद्यमान हैं और सगड़ाह के अछबू व लुधियाना के प्रीतम के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही करने का निश्चय किया[9]।

---

6. असेस्मेन्ट रिपोर्ट तहसील रेणुका 1930 पृ. 31.32
7. सिरमौर रियास्त की बन्दोबस्त रिपोर्ट (पाण्डुलिपि 1930.31 पृ. 19
8. साक्षात्कार लम्बरदार भगवान सिंह, मोहीराम, सहीराम अध्यापक लुधियाना। महेन्द्र सिंह सगड़ाह वंशज अछूब और प्रीतम मुख्य आन्दोलन कर्ता
9. मोहीराम लम्बरदार नोहरा एवं चाचा बुटीनाथ नाहन

मुन्शी नन्दलाल के नेतृत्व में सिरमौर रियास्त की सेना सगड़ाह तक पहुंच गयी। लोगों ने बन्दूकधारी तथा तोपयुक्त सेना का लाठी व पत्थरों से मुकाबला करना चाहा किन्तु एक घन्टे के युद्ध के बाद ही आन्दोलन कारियों ने अपना पलड़ा हलका पाया और भाग गये[10]।

अछबू व प्रीतम शिमला पहुंचे किन्तु उनकी बात सुनने के स्थान पर उन्हें राजा के पास नाहन भेज दिया गया जहां उन पर मुकदमा चलाया गया व उमर कैद की सजा सुनाई गयी। अछबू ने अपनी सजा का काल पूरा किया किन्तु प्रीतम की कारागृह में १६ वर्ष पश्चात् मृत्यु हो गयी अतः उसकी शेष अवधि को पूरा करने के लिए उसके पुत्र रामधन को कारागृह में डाल दिया गया।[11]

सेना ने आन्दोलन कारियों के घरों को लूटा व आग लगाई, उनकी चल और अचल सम्पति जब्त कर ली गयी केवल लुधियाना में एक मकान बचा जहां प्रीतम की माता ने दरवाजा बन्द कर भवन में आत्मदाह का डरावा दिया। प्रीतम के परिवार के लोग भाग कर जुब्बल रियास्त के कुलग ग्राम में चले गये जहां एक टुटा फुटा मकान लुधियाना के उस खानदान से सम्बन्धित माना जाता है[12]।

विद्रोह को कुचलने के बाद १८७८ में बन्दोबस्त का कार्य आरम्भ किया गया फिर गिरी पार में भूमि कर सबसे अधिक १२५% बढ़ाया गया व तहसील पालवी का नाम १८८५-८६ में बदल कर रेणुका कर दिया गया।[13]

भले ही आन्दोलन असफल रहा किन्तु इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव १९४२ के पझौता आन्दोलन पर पड़ा। इस आन्दोलन में जा शहीद हुए थे वे आज भी लोक गीतों में अमर हैं जिनका नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है।[14]

एम. आई. जी.-१३. आवास बस्ती
नाहन (हि. प्र.)

10. बालगोबिन्द पृ. 80
11. साक्षात्कार मास्टर सहीराम लुधियाना महेन्द्र सिंह कम्पाऊंडर सगड़ाह
12. कुलग वासी प्रधान कलीराम से साक्षातकार
13. सिरमौर रियास्त गजेटियर 1935
14. शर्मा रूपकुमार, सिरमौर रियास्त व ब्रिटिश सरकार के मध्य सम्बन्ध का विश्लेषण (एम. फिल डाइबरटेशन) 1978 p. 42

पहाड़ों में विवाह संस्कार

डॉ० बलदेव ठाकुर

लोक गीत लोक जीवन के सजीव चित्र हैं। वे समाज विशेष की वास्तविक झांकी प्रस्तुत करते हैं। उनमें हमारी भावनाएं और संवेदनाएं संगीतमय रूप से प्रतिध्वनित होती हैं। वे समाज की प्रकृति, वातावरण और परिस्थितियों की उपज हैं और इसलिए उन में जहां मानव जीवन की रंगीनियों का प्रतिपादन मिलता है वहां वे समाज की कर्कश और कठोर वास्तविकताओं का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक गीतों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसे लोक-गीतों ने अपनी परिधि में न समेटा हो।

ऐसे लोक गीतों में संस्कार गीतों का महत्त्व है। भारतीय समाज आदिकाल से एक अनुशासनबद्ध इकाई रहा है। आर्य ऋषियों ने समस्त जीवन-यात्रा को सामाजिक नियमों की सुदृढ़ कड़ियों में पिरोया था। हमारे शास्त्रों में सामाजिक और वैयक्तिक व्यवस्था के लिए विधिविधान निर्धारित थे। उन्हें संस्कार कहा जाता है। आर्य संस्कृति में सोलह संस्कारों का उल्लेख है, यथागर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णवेध उपनयन, वेदारम्भ, सामावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास और अन्त्येष्टि। भारतीय जीवन-पद्धति इन्हीं संस्कारों द्वारा संयोजित होती थी। जन्म से लेकर मृत्यु के बाद तक मानव-जीवन इन संस्कारों से सम्बद्ध था। वर्तमान सामाजिक जटिलता और आधुनिकीकरण के कारण इन षोडश संस्कारों में से बहुधा का लोप हो चुका है, और इन में से कुछेक का ही प्रयोग शेष रहा है। आदिकाल में इन संस्कारों को वेद-मंत्रों द्वारा निभाया जाता था। अब वैदिक मंत्रों का स्थान लोक गीतों ने लिया है। विभिन्न संस्कारों के अवसर पर स्त्रियां अपने कोमल कण्ठ से मधुर गीत गा कर अपना उल्लास प्रकट करती हैं और जन-मन का अनुरंजन करती हैं। विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को प्रायः मंगल या मांगल गीत कहा जाता है। विवाह हमारे धार्मिक और सामाजिक जीवन का एक आवश्यक अंग है तथा इसका विधान संसार के सभी स्थानों पर पाया जाता है। सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में जैसा विवाह का विशेष स्थान है, वैसे ही इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत अन्य संस्कार गीतों से अधिक विशिष्ट हैं।

विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को प्रायः मंगल या माँगल गीत कहा जाता है। मनुष्य के जीवन में जितना विवाह का महत्त्व है उतना अन्य किसी संस्कार का नहीं है। यही कारण है कि जितना उल्लास और हर्ष विवाह के अवसर पर प्रदर्शित होता है उतना अन्य किसी समय अभिव्यक्त नहीं होता। विवाह हमारे धार्मिक और सामाजिक जीवन का एक आवश्यक अंग है तथा इसका विधान संसार में सभी स्थानों पर पाया जाता है। सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में जैसा विवाह का विशेष स्थान है, वैसे ही इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत अन्य संस्कारों के गीतों से अधिक विशिष्ट होते हैं। विवाह संस्कार में एक लम्बी प्रक्रिया और परम्परा निभाई जाती है। इसमें शास्त्रीय और लौकिक दोनों प्रकार के अनेक आचार सम्पन्न होते हैं। यही नहीं इसमें एक परिवार नहीं अपितु कई परिवारों का आनन्द सम्मिलित होता है। इसलिए इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। वे विवाह के विभिन्न अनुष्टानों और क्रियाओं से सम्बन्धित होते हैं तथा वर और वधू दोनों के घरों में प्रायः समान रूप से गाए जाते हैं। विवाह की कोई ऐसी क्रिया नहीं है जो बिना गीतों के सम्पन्न होती हो।

हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी समाज में विवाह का शुभारम्भ लड़की या लड़के के लिए जीवन साथी ढूंढने के प्रयत्नों से होता है और उपयुक्त साथी ढूंढ लेने पर इस की पुष्टि एक विशेष अनुष्ठान द्वारा की जाती है जिसे विभिन्न स्थानों पर कुड़माई, सगाई, ठाका, वरणी या मंगणी के नाम से पुकारा जाता है।

सामान्यतः ये सभी शब्द समानार्थक लगते हैं और आजकल प्रायः समान अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं, परन्तु वास्तव में ये समानार्थक नहीं हैं और अपने आरम्भिक चरणों में तथा कुछ भागों में आज भी ये अलग-अलग अर्थ के द्योतक हैं। मूल रूप में कुड़माई शब्द ऐसे समाज में प्रयुक्त होता रहा है जहाँ लड़के और लड़की की सहमति को अधिक महत्व नहीं दिया जाता तथा उनके माँ-बाप ही शादी तय कर लेते हैं। कुड़माई वस्तुतः कुड़म-कुड़मनियों की रजामन्दी और वचनबद्धता होती है। जहां लड़की के माता-पिता वर को ढूंढ लेते हैं तो उस प्रक्रिया को वरणी कहते हैं तथा जहाँ लड़के का बाप लड़की ढूंढ लेता है या मांग लेता है तो उसे मंगणी कहा जाता है। सगाई सामान्य शब्द नहीं है। इसका अर्थ सगा बनाना या निकट सम्बन्धी बनाना है और मूलतः तब या ऐसे समाज में प्रयुक्त होता है जब किसी द्वारा परित्यक्त या विधवा हुई स्त्री को पुनः विवाह के लिए निश्चित किया जाता है। ठाका का अर्थ रोकना या ठहराना है अर्थात् विवाह सम्बन्ध निर्धारित करना है। शास्त्रों में इस अनुष्ठान को वाग्दान कहा गया है। इस प्रक्रिया को अपने सामर्थ्य के अनुसार एक रुपया देकर भी किया जाता है और अनेक स्थानों पर लड़की का पिता लड़के को सिन्दूर, नारयल, कुछ वस्त्र, चांदी की कटोरी, फल, मिठाई और कुछ नकद राशि भेजता है। लड़के के घर में नव-ग्रह पूजा होती है और पास-पड़ोस की स्त्रियां

मंगल गाने गाती हैं। इसी समय विवाह के लिए तिथि भी प्रायः निर्धारित होती है और इसी संदर्भ में गाए जाने वाले गीतों में कुल्लू जिला के औटर सिराज का एक गीत उल्लेख ीय है जिस में यह कहा गया है कि मार्गशीर्ष में पाला, पौष में सर्दी, माघ में पुण्य स्नान, फागुण में होली, चैत्र में वणास, बैशाख में जुही, जेठ में कुई फूलों के खिलने, अषाढ़ में अधिक ताप, सावन में वर्षा, भादों में काली रात्रि, आसौज में कपास फूलने के कारण विवाह मत कराना। केवल कार्तिक में ही विवाह रचाना। विवाह के लिए कार्तिक महीने को सब से अच्छा महीना कहा गया है :—

मशीरे ना रांची ओ शंकरा, मशीरे पाला पौड़ो,
पोशे ना रांची ओ शंकरा, पोशे हुआ शेला लाड़ो।
माघे ना रांचो शंकर, माघे करे स्नाना,
फागणें ना रांची शंकरा, फागणे होए होलिका।
चैत्रे ना रांची शंकरा, चैत्र फुलिया बणासा,
बशहे ना रांची शंकरा, बशहे फुलिया जुई।
जेठे ना रांची शकरा, जेठे फुलिया कुई।
शाड़े ना रांची शंकरा, शाड़े तपी लाडो होये।
शौणे ना रांची शकरा, शौणें वर्षा दे मेऊ,
भाद्रा ना रांची शंकरा, भादरे मड़ी अमावासी होए,
शौजे ना रांची शंकरा, शौजे फुलिया कपाहा,
काती रांची शंकरा, काती करिए ब्याहा।

सिरमौर क्षेत्र में विवाह की निर्धारित तिथि से लग-भग एक सप्ताह पूर्व वर और वधू के पिता अपने-अपने कुछ सम्बन्धियों को लेकर बरात-मार्ग के लग-भग बीच में किसी जलाशय के निकट एकत्रित होते हैं और पूजा-पाठ करने के बाद कन्या पक्ष वाले वर पक्ष को बारात लाने के लिए निमंत्रण देते हैं। तब अपने-अपने घर लौट कर शाम को भोजन के पश्चात गांव की स्त्रियां वर वधू के घर एकत्र हो कर गीत गाती हैं :—

बन्ना तेरी बन्नी जीए लिख भेजी चिठीए,
तू तो आ रे बन्ना म्हारे दहलीजे।
आवणा ता आवणा बन्नी मेरीए,
सनयारे रे वेढ़े कुछ काम बन्नी मेरीए।

बन्ना तेरी बन्नी जीए लिख भेजी चिठीए,
घोड़े दड़ांवदा हाथी चौढ़ी रौ तू आ रे बन्ना,
म्हारे राम दहलीजे आ रे बन्ना ।

गीत में बधू द्वारा वर को लिखी चिट्ठी का संकेत है जिसमें वह वर को घोड़े दौड़ाता हुआ या हाथी पर चढ़ कर ड्योढ़ी तक आने का निमंत्रण देती है और वर आश्वासन दिलाता है कि वह जरूर आएगा, अभी कुछ सुनार के यहां आभूषण बनाने का काम बाकी है ।

इसी बीच रिश्तेदारों और सम्बन्धियों को निमंत्रण देने का समय होता है। लड़के के विवाह पर स्त्रियां इकट्ठी हो कर वर की माता की ओर से अपने मायके में लड़के के नानकों को निमंत्रण के सम्बन्ध में गीत गाती हैं और सुए या कौवे से निमन्त्रण देने के लिए कहा जाता है :—

उड़ेयां बे कागा तू बड़ेयां भियागा,
जाई रिहां मेरे पेकियां दे ।
पहला सुनेहा मेरीया माईया सुपुतिया जो,
धीया ने काज रचाया ।
उड़ेयां बे कागा, तू बड़ेयां भियागा,
जाई रिहां मेरे पेकेयां दे ।
दूजा सुनेहा मेरेया वीरे जो देयां,
भैणा ने काज रचाया ।
क्या ना तेरे पेके दे पिंडे दा
क्या नां तेरे बीरे दा ।
सलौनी नां मेरे पेके दे पिडे दा,
राजा नां मेरे बीरे दा ।
उड़ेयां बे कागा तू बड़े भियागा ।।

निमंत्रण पाते ही ज्योंही वर के मामे और मामियां विवाह पर आते हैं, तो हर्षोल्लास में पुनः गीत गूंज उठते हैं जिसमें वर से कहा जाता है कि ऊंचे स्थान पर चढ़ कर देख मामे घोड़ियों पर, मामियां डोलों में, भाई मोटरों पर भाभियां गाड़ी में सवार हो कर आए

हैं। साथ ही परिहास में भाइयों को माताओं के बेटे परन्तु भाभियों को नटनियों की बेटियां कहा जाता है। वे इत्र की शीशियाँ हैं जिन्हें भाई सूंघते हुए आ रहे हैं :—

उच्चे ता खड़ोई ने दिख लाड़ेया तेरे मामे आए
मामे तां आए जी घोड़ियां, मामियां आईयां डोले।
भाई तां आए जी मोटरां, भाभीयां आईयां गड्डियां
भाई तां साडियां अमां दे जाए, भाभीयां नटणी दी जाईयां
भाभीयां अतरे दी सीसीयां, जी भाई सींघदे आए।
उच्चे तां··· ··· ···

इसी बीच विवाह के लिए समूहत अर्थात् शुभ मुहूर्त निकाला जाता है, और कलश की स्थापना की जाती है। कुल पुरोहित फश पर आटा, चावल और रंगों का चौकोर चित्र बनाता है। उस चौके में दीपक जला कर मंत्रोच्चारण के साथ कलश की विधिवत स्थापना करता है। इसे शं ग या शयान स्थापना कहा जाता है। तभी स्त्रियां गीत गाती हैं कि हे दीपक तुम जलते रहना। तुम्हारे बिना कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। तू सोने चांदी और मिट्टी का दीपक है। रेशम की बत्ती है और घी, दूध तथा तेल से जलता है :—

बौडे-बौडे दीया सौगरी राती रौ, तौएं बिना घौड़ोए न होए।
कीजू केरौ दोउड़ा, कीजू केरी बौड़ादी बाती, कीजू केरी लागदी धारौ
सूने केरौ दीउड़ेया, पाटा केरी बौड़ादी बाती, घीऊ केरी लागदी धारौ।
रूपे केरौ दीउड़ेया, रेशमौ केरी बौड़ादी बाती, तेलौ घीऊ केरी लागदी धारौ

इसके बाद मंगल गीतों द्वारा देवताओं का अ ह्वान किय जाता है और आशीर्वाद की प्राप्ति के लिए उनकी स्तुति की जाती है। इसी के अनुरूप मंगलाचरण के रूप में सिर पर सोने की माला लिए हुए गणेश,नव-ग्रहों, धरती माता, केले के खम्बे, विनायक देवता आदि की पूजा की जाती है और उनसे शुभ कार्य की सफलता के लिए समृद्धि और यश की कामना की जाती है, यथा :—

शाना री कलाई प्रथम गणपति पूजीए, शीरे शोभी सूने री माला,
पहले पूजे गणपति, करे मंगलाचार, मगलाचार खेले बनाइका।
फिरी पूजे नौ गरौहा, करे मंगलाचार, मगलाचार खेले बनाइका.

फिरी पूजे केले खाम्बे, मातृ पूजे मंगलाचार, मंगलाचार ...... --
शना री कलाई प्रथम गणपति पूजीए, पूजे देव बनाइका।

इस प्रारम्भिक पूजा अर्चना और शुभ कामना के बाद स्त्रियां बधाई गीत गाती हैं :—

पहला बधावा शब्द सुहावा, केते दूरे ते आया।
बड़ी दूरा पे आया बधावा, चुगी लियाया कलियां ॥
जिन्हा रा मालणी हार गुन्धाया, गले लगाया।

इसके पश्चात् विवाह संस्कार का अगला महत्वपूर्ण अनुष्ठान स्नान का है। स्नान का आरम्भ तेल-बूटणा कार्य से होता है। बूटणा अर्थात् उबटन जौ के आटे, हलदी और तेल का मिश्रण होता है। कुल पुरोहित हवन करता है। एक ओर हवन-पूजा हो रही होती है और दूसरी ओर स्त्रियाँ मधुर कण्ठ से तेल-उबटन का यशगान करती हैं। चार पद गाए जाते हैं और हर पद के अन्त में पहले तेल बटना हवन में डाला जाता है। यह गीत वर और वधू दोनों के घर गाया जाता है। बताया जाता है कि यह साधारण तेल-बटना नहीं है। यह भगवान राम से आया है। इससे रूक्मिणी ने भगवान कृष्ण को प्राप्त किया था। इससे कामनी ने सोलह-शृंगार किया था। इसमें कस्तूरी, परिमल, चम्पा महुआ, मसखरा और कूजे के फूल-रस पड़े हैं। इसे सौ कोस दूर से लाया है। इससे जब देवी-देवता नहाते हैं तो गंगा सूख जाती है। ये मंगलाचरण के गीत ब्रह्मा ने रचाये हैं और वेदों के माध्यम से युग-युग से हम तक पहुंचे हैं :—

इत पहलड़ा मंगल हरे, हरे राम ते आइया।
तेल हंसी मेरी रूकमणी, हरिजी का दर्शन पाइया ॥
दर्शन तो पाइया कृष्ण, घेरा मूंदी हर हंसिया।
सोलह सिंगार किया कामन, मने हमें बरहंसिया ॥
तन मन तो मेरा उन्हें होलिया, आप जल गहरिया।
भैणे हे भवानी पदा ये आनन्द, इत मंगल पहलिवा ॥
इत दुआड़े मंगल हरि, ताखे बटणा लाइया।
कस्तूरीए परिमल भैणे, मसखर रलाइया ॥
आणू चम्बा और मरूआ फूल लाइया कूजेया।
भैणे हे भवानो पैया आनन्द मंगल दूजेया ॥
इत तियड़े मंगल लियाओ दही सिर नहाया।

जल नीर से कोसे मेरी, हाथे लाड़े मलमल नहाया ॥
नहलाया जब देऊ देवी खुश्क गंगा बहालेया ।
सेहरा तो तरया भला सरया, नाम हरिजी का लीजिए ॥
भैणे हे भवानी पैया आनन्द मंगल तीयडा ।

इस चौथड़े मंगल, कृष्ण जी चौरा बोलेया ।
गांवे थी नारी जे इन ब्रह्म वेद रचायेया ॥
वेद ब्रहमे रचायेया, लगन गणेया मुहूरता ।
जुग-जुग तो थकण वेद रचाया नाम हरिजी का लीजिए ॥
भैणे हे भवानी पैया ये आनन्द मंगल चौथड़ा ।

इस के बाद वर के सगे सम्बन्धी सुहागन स्त्रियाँ दूब के गुच्छे ले कर वर के सिर पर तेल डालती हैं । जो-जो तेल डालते है साथ उसी का नाम लिया जाताः—

तेल लाए तेलीया, तेल कुणीए संजोए ।
तेल लाए तेलीया, तेल मामीए संजोए ॥
तेल लाए तेलीया, तेल कुणीए संजोए ।
तेल लाए तेलीया, तेल आमोय संजोए ॥
तेल लाए तेलीया, तेल भैणी संजोए आदि ।

इस अवसर पर बिलासपुर में स्त्रियां अपने मधुर गीत में तेल की कटोरी को भी रणकणे अर्थात् संगीत देने का आग्रह करती हैं :—

रणकेयां सोने कटोरड़ीए पर तेले नूं इस बेले नूं ।
रणकेयां सोन कटोरड़ीए पर पैसे नूं इस बेले नूं ॥
पहला तेल संजोया कुआरीया कन्या ने ।
रणकेयां सोन कटोरड़ीए, पर तेले नूं इस बेले नूं ॥
दूजा तेल संजोया लाड़े दे भाई ने ।
रणकेयां सोन कटोरड़ीए पर पैसे नूं इस बेले नूं ॥
तीजा तेल संजोया लाड़े दीयां मासीया ने ।
रणकेयां सोन कटोरड़ीय पर तेले नूं इस बेले नूं ॥

तेल-बटणा का मुख्य कार्य वर-वधू के रूप को निखारता है। उबटन के मलने से उनके सौंदर्य में वृद्धि होती है तथा आकर्षण बढ़ जाता है। इस नख-शिख पद्धति से वर को शिव, कृष्ण और राम तथा वधू को पार्वती, रूक्मिणी और सीता का ही अनुरूप माना जाता है। इस तरह उबटन का केवल श्रृंगारिक महत्व ही नहीं है, वरन् आचारिक विशेषता भी है :—

बाय बा कि बुटणा चौलां दा, बुटणे मलेंदियां दो जणीयां
साईयां चाबीयां सक्कीयां भैणा ।।
बाय बा कि बुटणा कटोरे दा, बुटणा मलेंदियां दो जणीयां ।।
दराण जट्ठाणीयां सक्कीयां भैणा ।।

अवधपूरी नगरी आये दशरथ राजा, रामै वियाहो सीया कुआंरी
कृष्णे विवाहऊई रूकमणी, शिवे विवाहऊई पार्वती कुआंरो
अत्री ऋषीए विवाहऊई अनुसुया, इन्द्रे रांचीया दृष्टा प्रमाणा

उबटन के बाद वर-वधू को नहलाया जाता है। इसमें भी मांगलिक भावना अग्रसर रहती है। इस अवसर के गीतों में मातृ-स्नेह और वात्सल्य का उत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत होता है। मां साधारण जल से नहीं गंगा के जल से और दूध दहीं से कृष्ण को नहलाएगी :—

आणौ मंढोलड़ी गांगो रा पाणी, गांगौ पाणीए गरेते इदै शनान कराए।
अणौ मंढोलडी केमटू रेडोले, केमटू री डूलोए गरेते शनान कराए॥
आण कटोरा दूध दहीं रा, कृष्ण मली-मली नहाए।

एक दूसरे गोत में नहाते हुए वर को नारायण और वधू को गोरी कहा गया है :—

डूलो-डूलो गौरीए पाणी तपाऊयो, विष्णु नारायणा करियो स्नाना।
आणे मेरे दादुआ गंगा तीरो पाणी, बाड़ो नारायणा करियो स्नाना।।
बाबू बोला माईए, आणे गंगा तीरो पाणी,
बाडो नारायणा करियो स्नाना ।।

इस अवसर पर स्त्रियों को हास-परिहास करने का सुन्दर अवसर मिलता है। वे एक दूसरे से गीत द्वारा पूछती हैं कि आंगन में यह कीचड़ किसने किया है। इसमें फिसल कर चाची गिर गई है :—

ग्रांगणे चिक्कड़ कुणी कीता जी, कुणी डोलेया पाणी ।
बुढ़े दा पुत्र नहा रिहा जी, उन्हीं डोलेया पाणी ।।
लांड़े दी चाची ढै पई जी, गोडे पै गई निशाणी ।
तुरपुर तुरपुर देखदी जी, जिहां भेड़ निमाणी ।।

यह सुन कर चाचियां उत्तर देती हैं :—

ग्रांगणे चिक्कड़ कुणी कीता जी, कुणी डोलेया पाणी ।
मामे दा भानजा नहा रिहा जी, तिन्नी डोलेया पाणी ।।
लाड़े दी मामी ढै पई जी, गोडे पै गई निशाणी ।
तुरपुर तुरपुर देखदी जी, जिहां भेड़ निमाणी ।।

नहाने के बाद वर को चौकी पर बैठाया जाता है उसके आगे मिट्टी के पात्र 'मली' में आग डाल कर रख दी जाती है तथा उस पर सफेद सरसों के दाने डाले जाते हैं। सरसों तिड़कने लगती है और उसका धुआं दूल्हे को दिया जाता है ताकि उसे किसी की बुरी नज़र न लगे। सरसों से गा-गा कर दूल्हे की रक्षा की कामना की जाती है :—

त्रिड़-त्रिड़ सेतीए सरूए राछ्र करीयां हो ।
इक राछ लाड़े, दूई बौएं, त्रिई परवारे हो ।।

साथ ही एक ओर दूल्हे की दादियां, चाचियां और ताइयां और दूसरी ओर उसकी मामिया, नानियां और मासियां एक दूसरे पर कटाक्ष करती हैं :—

सेतीयां सरूग्रां तिड़-तिड़ लाई, लाड़े दी मामीए, मासीए बुड़ बुड़लाई ।
सेतीयां सरूग्रां तिड़-तिड़ लाई, लोड़ दी चाचीए, ताईए बुड़-बुड़ लाई ।।

साथ-ही-साथ गुड़ बांटा जाता है और गणेश की पूजा की जाती है :—

सूरज कुंडे लाड़े नहौण कीता, क्या कीता लाड़े लम्मीयां बाहों ।
नहौई धोई गुड़ घीऊ खादा, गणपति पूजेया लम्मीयां बाहीं ।।
नहौई धोई सेतीया ग्ररग पुग्राया, ग्रमिरस पीता नहौई धोई ।

स्नान के बाद वस्त्र धारण करते हुए भी अनेक मंगल गीत गाए जाते हैं। इनमें

दूल्हे की पगड़ी, चोगा, दुशाले, कुण्डल, सूथण, मुरकी, सहरा आदि वस्त्राभूषणों की प्रशंसा की जाती है। इन्हें सोने की सूई और रेशम के धागों से सिलाया बताया जाता है। एक सहरा वर का मामा लाया है, दूसरा सहरा मालन द्वारा लाया बताया जाता है। ये वे मथुरा बाजर से लाए हैं। सहरे का मूल्य नौ लाख मोती तथा छः लाख रूपये बताया जाता है यह हार श्रृंगार कृष्ण कन्हैया वर ने पहना है और इसे पहन कर वे कुंदनपुरी जाएंगे जहां से रुक्मिणी को विवाह कर लांएगे:—

खूब बणा लाड़ा, खूब बणो लाड़े दी पगड़ी।
लाड़े दा चोगा खूब बणेया, खूब बणे लाड़े रे कुंडल ॥
खूब बणा लाड़े रा साला, खूब बणी लाड़े री सूथण।
कीजू केरी सीउण, कीजू केरो धागा ॥
सोने केरी सीउण, रेशमो केरो धागा।
मथरा बजारे मामू जी आए, मामू जी शेहरा ले आए ॥
केती लाख शेहरा, केतो लाख मोती। केती लाख शेहरा रा मोल।
नौ लाख शेहरा, नौ लाख मोती, छः लाख शेहरा रा मोल ॥
मथरा बजारे मालण आई, मालण शेहरा ले आई।
खूब बणा लाड़ा, खूब बणेया लाड़े रा शेहरा ॥
हार श्रृंगार पहनी कान्हेया, खूब बणेया लाड़ा।
कपड़े पहने जाणा कुनणपुरी, शेहरा पहने जाणा कुनणपुरी ॥

ऐसा हार-श्रृंगार करके वर-यात्रा आरम्भ होती है। दूल्हा खूब सजाई हुई घोड़ी पर चढ़ता है। घोड़ी को मखमल तथा ज़री की ज़ीन और फूल-मालाओं एंव छत्र से सुसज्जित किया जाता है। माता और बहिने आरती उतारती हैं। इस समय विवाह संस्कार के प्रमुख गीत गाए जाते हैं जिन्हें घोड़ी-गीत कहा जाता है। घोड़ी-गीतों में वर-यात्रा का चित्रण होता है। वर को माता-पिता तथा देवी-देवताओं के पांव पड़ने के लिए कहा जाता है। वर का सौंदर्य-वर्णन इन गीतों का मुख्य विषय होता है। विवाह की शुभ रस्में निभाने की चर्चा होती है;—

नीली-नीली घोड़ी लाड़ा तेरी लाल जड़े।
दम्मा जी दी बोरी तेरा बापू भरे ॥
अम्मा सुहागन तेरे सगन करे।
भैण सरीखीयां तेरी पक्खी झोले ॥

इसी तरह अम्मा के स्थान पर चाची, ताई, मामी, भाभी आदि अन्य सम्बन्धियों के नाम लिए जाते हैं। एक दूसरे गीत में इस खुशी के अवसर का संकेत होता है जिस के लिए घोड़ी का प्रबन्ध किया गया है। वर को कृष्ण कहा जाता है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश को बारात में शामिल होकर उन से शुभ-कामना की जाती है :—

श्रीपत स्याम सुखदाई, जहां कारण घोड़ी मोल मंगवाई।
आऊंदी घोड़ी दर है खड़ोती, हीरे-लाल लगे गज मोती॥
घोड़ी चढ़ेया कंवर कन्हैया, साथे सके बलभद्र यह भैया।
सब कुंदनपुरी जाई पहुँचे, देख जागे दानव सब सुते॥
हरी कुंदनपुरी लगी रसोईयां, जय-जय करे सब कोई।
ब्रह्मा, विष्णु जनेती जो आए, वेद रहौ त्रिया मंगल गाए॥
काने कुण्डल, गले रूंडमाला, मुरली को धुनक धुना-धुन बाजे।
अमृत भोजन सबने लेणा, निर्मल नीर गंगा जल पोणा॥

वर के घर में घोड़ी गीतों के साथ मंगल गीतों का समापन नहीं होता। जब वर घोड़ी पर चढ़ कर वधू के घर प्रस्थान करता है तब से लेकर वर-वधू के गृहप्रवेश तक घर और पास-पड़ौस की स्त्रियों को मनोरंजन के लिए पर्याप्त समय मिलता है। वे इस समय का खूब लाभ उठाती हैं और तरह-तरह के गीत गाती हैं और नृत्य करती हैं। इनमें हास-परिहास, कटाक्ष- उलाहनों का प्रभुत्व रहता है। ऐसे गीतों में पढ़ौआ, झमाकड़ा सिठनी आदि गीत प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इनमें से अनेक गीत पहले अवसरों पर गाए होते है, परन्तु स्त्रियां अब उन्हें अधिक आराम, शौक, चैन और आनन्द के साथ गाती और नाचती हैं। नृत्य के !साथ-साथ इनमें नाट्य का भी समावेश रहता है। झमाकड़े में स्त्रियाँ आटे या कपड़े का गुड्डा या पुतला बनाती है जिसे नानू कहते हैं। उसे कपड़े पहनाए जाते हैं और फिर उसे मधुर गीतों के साथ नचाया जाता है:—

झमाकड़ेया ओ झमाकड़ेया नंगा आया झमाकड़ेया।
लाल गोछा लाया बो झमाकड़ेया–झमाकड़ेया॥
झमाकड़ा बोलदा नचणे जो, नचणे जो नचाणे जो।
बसणे जो, उठी जाणे जो, नानी रा मन बहलाणे जो॥

निश्चित समय पर वर अपने साथ वधू ले कर घर वापिस आता है। तब 'अन्दरेरा' अर्थात् गृह-प्रवेश की रस्म निभाई जाती है। झिलमिलाती डोलो से जब वधू बाहर निकलती

है तो द्वार पर उसका स्वागत किया जाता है और सास तथा अन्य स्त्रियां मधुर स्वर में स्वागत-गीत गाती है:—

अजी अम्बा दिया डालीया कोयल बोले ।
रण-बण कोयले शब्द सुहावा ॥
नी आ मेरीए बहूए, एह घर तेरा ।
एह घर तेरा बहूए, एह वर तेरा॥
नी तुद्ध आइया तां मेरा आंगण सुहावा ।
नी तुद्ध आइया तां मेरा अन्दर सुहावा ।।
नी आ मेरी बहूए, एह घर तेरा ।

गृह-प्रवेश के बाद जब वधू प्रथम बार पति और पति के सभी सम्बन्धियों के पांव छूती है तब 'पैर बंदाइया रा गीत' गाया जाता है :—

पैरां बन्दीयां लाड़ीए, अपणे सौहरे व्हाल आईं ।
पैरां बन्ददी बो जायां, शीव सुणदी बो जायां ॥
पैरां बंदीयां लाड़ीए, अपणी ससू व्हाल आईं ।
पैरा बंददी बो जायां, शीष सुणदी बो जायां ॥
शीष सुणदी बो जायां, सेवा करदी बो जायां ।
ससूए सखतीड़ी होयां, नूहे भकतड़ी होयां ।
पैरा बंददी बहूए, शीष सुणदी जायां ।

गृह-प्रवेश के दूसरे दिन वर तथा वधू अपने नाई, परोहित और परिवार की स्त्रियों के साथ पीपल पूजा के लिए जाते हैं। पीपल के पास जाकर परोहित हवन करता है और वर के सिर से सेहरा उतार कर वधू की झोली में डाल देता है। उसी के साथ गीत के मधुर स्वर गूंज उठते हैं :—

पीपल पूजणे एह कुण आई ।
पीपल पूजणे नौईं लाड़ी आई ॥
ससू नड़ाना जो सौगी लाई ।
पीपल पूजणे नौईं लाड़ी आई ॥

द्राणीयां जठाणीयां जो कन्ने लाई ।
पंडत परोहतां जो सौगी लाई ॥

विवाह का कार्य यद्यपि अब पूरा हो चुका है परन्तु विवाह संस्कार की अभी पूर्ति नहीं हुई है। दूल्हन को नये घर में कार्य करना है। उसका शुभारम्भ 'पानी भरने' से सम्पन्न होता है। नई दुल्हन छोटी सी गागर ले कर कुछ स्त्रियों के साथ गांव के कुएं या बावली पर जाती है। वहां पहुंचने पर बावड़ी या कुएं को सिन्धूर और बटणा लगाती है और उसे प्रमाण करती है। परन्तु जब पानी भरने लगती है तो पानी में रहने वाला मेंढक उसे पानी भरने नहीं देता। कारण साथ की स्त्रियां गीत गाती हुई बताती हैं :—

एह मीनक पानी भरने न देंदा हो ।
जी एह मंगदा लाड़ीया रिया अम्मा जो ॥
असां देणी लाड़ीया री अम्मा हो ।
एह मीनक पानी भरने न देंदा हो ॥
असां देणी लाड़ीया री ताई हो ।
नी एह मंगदा लाड़ीया री चाचीया जो ॥
असां देणी लाड़ी री चाची हो ।

अरसू (औटर सिराज)

हिमाचल का लोक सांस्कृतिक पर्व सैरी का त्यौहार

--डॉ० शर्मा शर्मा

हिमाचल की लोक संस्कृति अपनी पुरातन परम्परागत प्रथाओं के लिए प्रसिद्ध है। यहां के पर्व और त्यौहारों के दो रूप उपलब्ध होते हैं। भारत के अन्य त्यौहारों के समान यहां जो पर्व त्यौहार चले आ रहे हैं वे आर्य संस्कृति की देन है। कुछ ऐसे त्यौहार हैं जिन का सम्बन्ध केवल स्थानीय जन समुदाय से ही सम्बधित है और वे अनार्य संस्कृति की धरोहर है जो रूढ़िगत हैं। ये सदियों से निरतर चले आ रहे हैं तथा यहां की लोक संस्कृति का आधार हैं। सैरी का त्यौहार भी इससे ही सम्बन्धित हैं। इसका प्रचलन कब और कैसे हुआ है इस विषय में कोई तथ्यपूर्ण सामग्री उपलब्ध नहीं। इस सम्बन्ध में यहां एक ही जन श्रुति प्रचलित है कि वर्षा ऋतु के संकट निवृति की प्रसन्नता में ही यह त्यौहार मनाया जाता है। समस्त कांगड़ा, हमीरपुर, जिला मण्डी, चम्बा और कुल्लू तथा गधेरन इस का व्यापक क्षेत्र है। इस की तिथियां आश्विन की संक्रांति और भाद्रपद का मासान्त है।

हिमालय वासो और हिमालय के पहाड़ अपने सौंदर्य के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। भारत के विश्व में इन का अपना स्थान है। इस अभूतपूर्व सुन्दरता के वर्णन तो होंगे किन्तु यह एक स्वाभाविकता है कि पहाड़ जन जड़ में सौन्दर्य युक्त आदि काल से अनवरत चला आ रहा है। सौन्दर्य की रसानुभूति और मानसिक चेतना साहित्य तथा संस्कृति एवं कलाओं में परिणत होती रही है। लोक संस्कृति के पर्व त्यौहार संगीत, नृत्य, कलाओं के साथ साथ धार्मिकता के साथ भी प्रतिबद्ध रहे है। ये परम्पराएं और प्राचीन प्रथाएं अपने में धार्मिकता का अंश संजोए हुए हैं। देवता प्रकृति के प्रति श्रद्धाभिभूत हो कर जन पद की मानसिकता, जन चेतना इन पर्वो का रूप लेकर प्रकट होती है। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा चम्बा प्रदेशों में बैशाखी (बसोआ) मिंजरां, चैत्र संक्रान्ति, जेठ संक्रान्ति सैरी आदि त्यौहार इस रूप में ही जन जीवन के साथ जुड़े हुये हैं। मिंजरां का त्यौहार जहाँ प्रदेश व्यापी बन चुका है तो सैरी का त्यौहार भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। बात इतनी है कि हमारे पक्ष की ये धरोहर अपने में ही केन्द्रित हो कर अप्रकट सी रही है। इस का स्वरूप अप्रच्छन्न नहीं हो पाया और स्थानीयता के रूप में ही इस का उल्लास अभिव्यक्त होता रहा।

सैरी के त्यौहार का प्रचलन कैसे हुआ इस में कोई कथानक उपलब्ध नहीं है। सैरी शब्द "सौर" से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। ज्योतिष शास्त्र में सौर मास और चान्द्र मास दो पृथक रूप में लिये जाते हैं। चान्द्रमास में तिथियाँ आती हैं और सौर मास में प्रविष्टा आता है। जब सूर्य एक राशि से दूसरे में प्रविष्ट करता है तभी संक्रान्ति का पर्व आता है। इस सौर शब्द से ही "सैरी" बना है। ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु की

फसल तैयार हो जाती है। बरसात के अन्त में जब प्रकृति एवं पहाड़ नहा धो कर साफ सुथरे उजले हो जाते हैं। चारों ओर हरितमा छा जाती है। मृदु नयी हरी घास दीर्घ-काय चरने से दूध देही, पशु धन, बलिष्ठ हो कर प्रदान करता है। पहाड़ के श्रम जीवी घास काट कर पशु सेवानुरक्त दुध दही खा पी कर बलिष्ठ और प्रसन्न होते है। रूप राशि रमणियों का छलकता यौवन और प्रकृति का सुन्दर वातावरण, आकाश की नीलिमा, खाली मेघों की श्वेताभा भरी अठखेलियाँ एक नया उल्लास सा भरती हैं। तभी यह सैरी का त्यौहार आ जाता है। इस के मनाने में एक और भी धारणा प्रचलित रही है। प्राचीन काल में जब दवा दारु का आधुनिक रुप प्रचलित नहीं था, बरसात में मलेरिया बुखार अन्य रोगों से जन जीवन युक्त नहीं था। बहुत समय तक लोग बरसाती बुखारों और रोगों से जकड़े होते थे। दूसरी ओर बरसात में साँप, दरिया, नदी प्रवाह का भय, मकान गिरने, जमीन धसने आदि के अनेक भय व्याप्त रहते थे। इन से सकुशल बच निकलने पर ही गृहस्थ में सुगृहिणियां इस माँगलिक पर्व को नाना प्रकार के व्यंजन खान पकवान के द्वारा मनाती हैं। आटे के भटूरू, पकोड़ू, पतरोड़ू, मीठी, नमकीन रोटियां घी में तल कर, भूषण वस्त्रालंकृत हो सज धज कर, छैल छबीलियाँ, पूर्णिमा के चन्द्र में रूप राशियाँ छलकता यौवन भरी अपनी विविध पाक क्रिया के व्यंजन पुरुषों, बड़ों, अतिथियों, सम्बन्धियों के आगे प्रस्तुत करती हैं। इस के पीछे अन्न धन का समर्पण भाव ही निहित है।

सैरी के त्यौहार मनाने का भी अपना विशिष्ट ढंग, रीति और परम्परा प्रचलित है। श्रावण मास तो शिव पूजन, नाग देवता के शनिवार, शिव भगवान के सोमवार पूजन बघाडी के दिन हैं। शिव मदिरों में अर्चना आभ्यर्चना चलती रहती है। भाद्रपद मास में तो कोई भी मांग-लिक कार्य नहीं होता। यह तो काला मास है। इस में तो रात्रियां अंधेरी हैं। बरसात के मेघ छाए हैं। मार्ग, गलियां कीचड़ से भरी हैं। हरे लम्बे घास ने मार्ग ढांप लिये हैं। धरती घास वनस्पतियों और बरसाती उपजों से आच्छन्न है। विरहिणी रो रो कर सावन की बरसात पिया बिना काटती है। कब यह कालकलूटी बरसात समाप्त हो तभी गा गा कर काटती है :—सावन भादों की काली रातें :—

सौवणा-सौवणा कर रही ओ पिआ सौवणा।
सौवणा गिया परदेस ॥
किकद घर औवणा।
लिखी लिखी चिट्ठियां मैं भेजां ॥
ओ पिया सौवणा।
तेरे भाइये रा लिया व्यहा ॥
कितुसां घर औवणा।

और फिर :—

कुथू ते ऊमड़ी काली बादली ।
ओ मुंडिया पृवी सिंह ।।
कुथू ते उगमया ठंडा नीर वे हां ।
छातिया ते उगमी काली बादली ।।
ओ कुड़िए इंदर देईये ।
नैणां ते उगमया ठंडा नीर ए ।।

सरस विछोह की रस पूर्णअभिव्यक्ति करती हुई विछोह के दिन काला महीना नवोढ़ा विरहिणी पिया बिन काटती हैं और तभी सैरी के त्यौहार को विदेश नौकरी गया पिया आ जाता है। कितना मधुर बन जाता है यह दिन उन के सान्निध्य में और उस के अंग अंग मुसकरा उठते हैं। उस दिन भाद्रपद की अंतिम रात को नाना पकवान बना कर के सैरी त्यौहार के मनाने की तैयारी की जाती है। रात के समय एक बांस की किरनी में नारियल लाल वस्त्र से ढाँप कर दीया जलाये, फुलों से सुसज्जित सैरी को लिये नाई (नापित) लोगों के घरों घरों में जा कर सोए लोगों को जगा कर सैरी की वन्दना करवाता है। पकवान चढ़ाए जाते हैं। राखियाँ रक्षा सैरी को अर्पित की जाती है। भेंट चढ़ाई जाती है काली रात में दीप शिखा, प्रकाश ज्योति की पूजा, सुरक्षा अधिष्ठात्री देवी के प्रति समर्पित भाव श्रद्धा का पर्व ही सैरी का त्यौहार है।

प्रात: काल आश्विन संक्रान्ति के दिन उठाते ही हाथ मुंह धो कर, नहा कर अपने अपने घरों में सैरी का पूजन लोग करते हैं। दीवार के साथ मक्की, काकड़ी, गलगल आदि सजाए जाते हैं। दीया जलाया जाता है। जल गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजन कर पकवान निवेदित किया जाता है। तब फिर दिन भर खाने का कार्यक्रम चलता है। पक्की तली रोटियां, नाना प्रकार के व्यंजन, दूध दही से परिवार जनों सम्बन्धियों और अतिथियों को प्रसन्न किया जाता है। दिन के तीसरे पहर इन रोटियों का वितरण प्रारम्भ हो जाता है। सभी ग्रामवासी एक दूसरे के घर रोटियों की थाली सव्यजन भेट करते हैं। सम्बन्धियों के घर रोटियाँ पहुचाई जाती है। बस यह सारा दिन खाने का ही त्यौहार चलता रहता है। सैरी सक्रान्ति के पश्चात् ग्रीष्मकालीन फसल तैय्यार होती है। यह पर्व इस का भी सूचक है। इस से ही आगे शरद् ऋतु प्रारम्भ हो जाती है। फिर आगामी नवरात्र, दशहरा, दीपावली भाईदूज त्यौहारों और पर्वों का महोना आने वाला होता है। उसी का संदेश वाहक यह सैरी का पुनीत पर्व होता है।

राजकीय हायर स्कैंडी स्कूल
परोर, जिला कांगड़ा हि. प्र.

देव मंढ़ोड़ : सिरमौर का टीका

--अमर देव 'आंगिरस' दाड़ला

भारतीय जनमानस वीरों की पूजा करता रहा है। समाज व्यवस्था की दृष्टि से जब राजा का पद सर्वोच्च माना गया तो उसमें देवत्व की भावना आरोपित की गई। राजा प्रजा की इच्छा शक्ति का ही प्रतीक था। प्राचीन भारत के कुलों, गणराज्यों और राष्ट्र का सूत्रधार राजा ही था। सभ्य सामाजिक व्यवस्था में राजा एक निर्वाचित प्रतिनिधि था जो युद्ध और शान्ति के समय सामाजिक सुरक्षा और व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। सभ्यता के प्रारम्भ में वह कुलागत नहीं होता था। उत्तर वैदिक काल के पश्चात राजा कुलागत बनता गया—ऐसे उल्लेख साहित्य में मिलते हैं। प्रारम्भ में राजा निरंकुश न था। वैदिक काल के पश्चात राजा जनमत द्वारा निर्वाचित भी होने लगा, किन्तु पश्चात काल में राजा के कुलागत बनने की परम्परा मिलती हैं।

राजा का महत्व इन पंक्तियों में स्पष्ट होता है—"सः राजा: यः रंजते।" राजा वह है जो प्रजा में रमता है अथवा प्रजा का रंजन करता है। मनु ने राजा की महन्ता के विषय में लिखा है कि जब सृष्टि निर्माण के पश्चात अराजकता फैल गई तब संसार की रक्षा के लिए प्रभु ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठ देवताओं का अंश लेकर राजा को उत्पन्न किया। राजा का महत पद हो है जिस के कारण भगवान राम कृष्ण बुद्ध को देवता के रूप में पूजा गया।

हिमाचल में सहस्रबाहु की स्मृति में दानो देव, महाराजा शकचन्द्र की स्मृति में धारा वाला देव तथा बारबरिक की स्मृति में बाड़ादेव के उत्सव पितृ देव राजा के रूप में मनाये जाते है।

शिमला जनपद में मंठोड़ देव राजा कुरगण प्रकाश की स्मृति में है जो सिरमौर का टीका कहा जाता है। कुरगण प्रकाश को ही देव मंढ़ोड़ कहा जाता है। इस क्षेत्र में इस देव का सिर कटने के कारण इस स्थान का नाम मंढ़ोड़घाट पड़ गया। "मढ़ोड़" का शाब्दिक अर्थ है "मुंड (सिर) कटने का स्थान।

वंशावली :— इस देव की वंशावलो के अनुसार विक्रमी संवत एक माघ मास में रविवार के दिन सिरमौर का राजा देव प्रकाश हुआ। इस राजा के सात रानियां थी, जिनके कोई संतान न थी। जब राजा बूढ़ा हुआ तो उसे चिन्ता हुई कि राजपाट

किसे सौंपे। एक दिन राजा ने अपने मन्त्री धर्मराय के पुत्र भद्र राय को बुलाया कि तुम योग्य उत्तराधिकारी को ढूंढो। भाद्रराय उज्जैन नगरी के पास यदुकुल के राजा के पास गया। उस राजा का कोगक नाम का मन्त्री था। उस राजा से उस भट पुत्र ने उस की रानी को दान में मांगा रानी गर्भवती थी। वह रानी चन्द्रवंशी थी जबकि राजा सूर्य वंशी था। राजा ने शास्त्रीय मर्यादानुसार सिरमौर नरेश के लिए रानी के साथ घोड़ा, नगाड़ा, बागा (वस्त्र) चौंर और डोला दान में दिये। साथ में रूद्र नाम का गर्ग गोत्रीय ब्राह्मण भी भेजा। रास्ते में गंगा नदी के किनारे पलाश वृक्ष के नीचे गाजि प्रकाश का जन्म हुआ। राजा गाजि प्रकाश एक रवि उत्तरे पौष मास एकादशी तिथि रविबार प्रविष्टे 13 शुभ लग्न घटि मुहुर्त में पैदा हुए।

सारे देश में नौबत बाजे बजने लगे। दरबार में स्वागत में उत्सव मनाये गये। इस राजा का गोत्र अवाण चादव माना गया। राजा गाजिप्रकाश की 3।वीं पीढ़ी में सिरमौर का राजा वीर प्रकाश हुआ। वीर प्रकाश के दो रानीयां थीं। बड़ी का नाम चन्द्र कला तथा छोटी का नाम हरि प्रवोधिनी था। चन्द्रकला के मधु मास में गुरूवार शुक्लपक्ष में नवरात्र रामनवमी के दिन अस्टम्य सूर्य उत्तर कर्क लग्नोदये, पुनर्वसु नक्षत्रे, द्वितीयाचरणे, मिथुन राशि मध्ये, शुभ वेला में कुरगण प्रकाश पैदा हुआ। दूसरा छोटा प्रद्युम्न प्रकाश तथा उससे छोटा बलदेव प्रकाश हुआ। दूसरी रानी के एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम था उद्धव प्रकाश।

राजवंश को अभिशाप :—एक दिन राजा वीर प्रकाश ने एक नटुए से कौशल दिखाने को कहा। नटुआ इस शर्त पर नट खेल दिखाने को तैयार हुआ कि राजा उसे मुंहमांगा इनाम दे। राजा ने नटुए से कहा कि वह रेणुका ताल में रस्से पर आर पार हो जाए तो वह उसे राज्य का आधा हिस्सा दे सकता है। राजा नटनी पर आसक्त तो था ही। वह नटुए को किसी बहाने समाप्त करना चाहता था।

नटुए ने यह शर्त स्वीकार कर ली। रेणुका ताल में आर पार बन्धे रस्से पर वह बड़ी चतुराई से आगे बढ़ने लगा। वह आधे ताल को पार कर चुका था। राजा का दिल धड़कने लगा। राजा ने तुरन्त मन्त्री को रस्सा काटने का संकेत किया। रस्सा कटते ही छपाक से नटुआ पानी में गिरा और डूबकर मर गया।

नटनी विलाप करने लगी। उस ने राजा को शाप दिया कि तीन दिन के अन्दर राजा की नगरी डूब जाए—ऐसा कह कर नटनी ने भी अपने प्राण उस ताल में छलांग मार कर दे दिये।

तीसरे दिन तुलसा नामक स्त्री एक सुबह तड़के दूध औघट रही थी कि उसे आकाश-वाणी हुई कि बुढिया तू इस नगर को छोड़ दे इस पापी राजा का सुबह होने तक नगर पानी में डूब जाएगा। राजा स्वयं नष्ट हो जाएगा। उस बुढिया के कहने से सारा नगर वासी भाग गये। शहर खाली हो गया। राजा के चारों पुत्र सिरमौर से भाग खड़े हुए। उन चारों ने भज्जी क्षेत्र में आकर शरण ली। छोटी रानी का पुत्र उद्धव प्रकाश थोड़ दिनों

पश्चात लौट कर सिरमौर का राजा बना। राजा डूब कर मर गया। नटनी का शाप ज्येष्ठ पुत्र कुरगण को भुगतना पड़ा।

टीका कुरगण प्रकाश श्वेत पुर (भज्जी) के 'हियूण' नामक स्थान में बस गया। दूसरा भाई प्रद्युम्न प्रकाश 'सांभे' (भज्जी) बनौण नामक स्थान में तथा तीसरा भाई गलोट (शिमला) में बसे।

ऐतिहासिक कथा गिरि नदी पर नटनी के पार होने की शर्त के सम्बन्ध में हैं, लगता है सहसों वर्षों की श्रुतियों के अनुरूप वंशावलीकार ने स्वाभाविक रूप में पात्र-परिवर्तन कर दिया है। फिर भी घटनाओं की एतिहासिकता तथा लोक विश्वास को देव की लोक प्रियता के कारण आघात नहीं पहुंचता है।

देव कुरगण प्रकाश :मंढोड़ देव

मंढोड़ घाट तत्तापानी (सुन्नी) से लगभग दो कोस की दूरी पर स्थित है। देव मंढोड़ का मन्दिर इसी स्थान पर है। इस स्थान का प्राचीन नाम शिम्बलधाला है। इसी अंचल में कुछ दूरी पर देवी मनसा अथवा 'बनसाई देवी' का एतिहासिक मन्दिर है। यह देवी स्थानीय निवासियों की कुलजा रही होगी। कुरगण प्रकाश को इसी देवी की शरण लेनी पड़ी थी।

हियूण में जहाँ कुरगण प्रकाश ने अपना आवास बनाया था किसी षडयन्त्र के कारण ब्राह्मणों ने टाँगरुए फाट लाया अर्थात सिर को धड़ से अलग कर दिया। देव के सिर कटने के कारण के विषय में अनेक जनश्रुतियां इस क्षेत्र में प्रचलित है। एक जनश्रुति के अनुसार कुरगण देव हियूण की किसो सुन्दर ब्राह्मणी पर आसक्त हो गये थे। फल स्वरूप नलावण के लोगों ने यज्ञ में आमन्त्रित कर के कुरगण का सिर धड़ से अलग कर दिया था।

एक अन्य लोक विश्वास के अनुसार देव कुरगण दिव्य राजकुमार थे। इन के महल नलावण में थे। ये सिद्ध पुरुष थे। आधि-व्याधियों के उपचार ये स्पर्श मात्र से या सरसों के दाने मन्त्रने से कर दिया करते थे। मुर्दों को जिन्दा कर देते थे। ऐसे चमत्कारों से नलावण—हियूण के अभिजात्य वर्ग के ब्राह्मणों तथा श्वेतपुर नरेश ने इन्हें ईर्ष्या से धोखे से यज्ञ में बुलवाकर मरवा डाला। देव के चेले देवपूजा के समय स्तुति इसी तरह प्रारम्भ करते है :—

"तो कित्ता तिने नलाऊणिए
तिने जगो रे निऊंदे बुलाया
गढ़ सिरमौरो रा टीका
चढ़ि पहाड़े नो श्राया

टांगरूए फाट लाया
सिर रहेया तेरी हियूणे बंसाले मशे रे ताने आया
किल्टूए चकी ल्याया। टांगरूए फाट लाया।

"इन नलावण के लोगों ने अनर्थ कर दिया। यज्ञ के बहाने आमंत्रित किया। सिरमौर का टीका पहाड़ में आया। किन्तु लोगों ने टांगरुए फाट लाया अर्थात काट डाला। कुमार का सिर हियूण में तथा धड़ मंढोड़ में रह गया। फिर भड़चनाल ने सिर तथा धड़ को किलटे में उठाकर देवी मनसा की शरण में लाया।

कुरगण देव के साथ उसका सेवक घोड़ेवान भड़चनाल था। उस ने किलटे में उसका सिर और धड़ इस विचार से उठाया कि इसे पास बहती सतलुज नदी में बहाएगा। जब वह हियूण से बश्यालड़ी पहुंचा तो वहां वह एक कक्कड के पेड़ के नीचे आराम के लिये बैठा। भड़ अभी सुस्ताया भी नहीं था कि एक भयानक आवाज के साथ कुरगण का सिर उड़ कर कक्कड़ वृक्ष पर जा लगा तथा डरावनी आवाजें करने लगा। भड़ हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। "हे छत्रपति, हे नरपति, हे स्वामी, मैं आपकी क्या सेवा करूं? कटे धड़ ने उत्तर दिया—"मेरे एक मात्र सेवक, मुझे अन्तिम बार सतलुज का पानी पिलाओ।"

भड़ ने विनती की कि कुछ दूरी पर ही सतलूज है। वही वह पानी पिलाएगा तथा अन्त्येष्टि करेगा। सिर वहीं अन्तर्धान हो गया। भड़ ने किलटा उठाया तथा सतलुज की ओर चला। अभी "मशे" की धार पर पहुंचा ही था कि कटे धड़ ने फिर पानी मांगा। भड़ ने किलटा रखकर प्रार्थना की कि सतलुज केवल 3 कोस है। यहाँ कहीं जल नहीं है। कटा धड़ कहता है कि अपनो गुर्ज (लौह छड़) यहीं जमीन पर मारो। ज्यों-ज्यों सेवक धरती पर गुर्ज मारता था एक अद्भुत चमत्कार होता जाता था। देव के गायक इस गाथा को इन शब्दों में व्यक्त करते है :—

पहली चोट घण गुरजा री बाई माटिया री फाल कडाई।
दूजी चोट भड़े गुरजा री बाई मैले री फाल कडाई॥
तीजी चोट भड़े गुरजा री बाई गौचो री फाल कडाई।
चौथी चोट भड़े गुरजा री बाई दूधो री फाल कडाई॥
पांजी चोट भड़े गुरजा री बाई नीरो री फाल कडाई।
त्याय लगी भई भूरेया चनाला, सतलुजा रा नीर पयादा॥

गुर्ज की पहली चोट से मिट्टी, दूसरी से खून, तीसरी से गोमूत्र, चौथी से दूध तथा पाँचवी से स्वच्छ नीर निकला। भूरे चनाल (भड़) ने सतलुज का पानी पिलाकर देव की

प्यास बुझाई। मशे की धार का यह जल सतलुज का जल ही माना जाता है। सैंकड़ों वर्षों से इस स्थान पर यह सरोवर यथावत स्थिति में है। इसके जल को पीना पुण्य समझा जाता है। कहते हैं वर्षा ऋतु अथवा शरद में जब सतलुज का जल मटमैला हो जाता है तब इस सरोवर का जल भी मटमैले रंग का हो जाता है। पूरे वर्ष सतलुज का प्रति बिम्ब इस में झलकता है। सतलुज के जल के साथ-साथ इसका जल भी घटता-बढ़ता है। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि जब भी सूखे के दिनों में इस स्थान पर रतजागा (कीर्तन) होता है तो अवश्य ही वर्षा होती है।

जनश्रुति आगे कहती है कि जब धार पर पानी निकल आया तो कटे धड़ ने ढ़ाई अंजुलियां पानी पीया। कटा धड़ भड़ से फिर कहता है—"मेरे सेवक, मुझे मनसा देवी की शरण में ले चलो।" भड़ किलटे को वहीं छोड़ देवी के सम्मुख उपस्थित होने चला। वह ज्योंही देवी के चौरे में प्रविष्ट हुआ तभी मनसा के शक्तिशाली दरवाणी ने उसे पकड़ लिया। वह उसे भक्षण करने ही वाला था कि देवी ने रोक लिया।

भड़ ने देवी से अनुरोध किया—"हे भगवती मनसा, सिरमौर का टीका कुरगण जो हियूण का स्वामी है आपत्काल में आपकी शरण चाहता है।"

महारानी बनसाई (मनसा) ने कुरगण सम्बन्धी लोकापवाद के कारण अपने साथ स्थान देना उचित नहीं समझा। उस ने यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। सेवक भड़ पुनः मशे की धार पर पहुंचा तथा देव को उत्तर सुनाया। कुरगण ने पुनः भड़ को देवी मनसा के पास भेजा और कहा कि देवी को कहो कि मैं उसे धर्म बहिन बनाता हूं। उसने पुनः जाकर देवी से कुरगण का अनुरोध सुनाया। देवी ने उस से कहा कि पास शिम्बलधाला स्थान है। वहां आवास की सभी सामग्रियां हैं। वहीं निवास करो। वह कुरगण को उठाकर शिम्बलधाले ले गया। भड़ ने किलटा रखा ही था कि धड़ तथा किलटा लोप हो गये। इसी पवित्र स्थान में देव मढोड़ की स्थापना हो गई।

देव के प्रथम दर्शन :— शिम्बल धार पर एक पत्थर की लिंग स्वयं उत्पन्न हो गई। इस स्थान पर गांव की गौवें चरने आती थी। इस लिंग के ऊपर आकर उन के स्तनों से स्वयं ही दूध निकल आता था। वे घरों में दूध नहीं देती थी। जब ग्रामवासियों को इसका रहस्य मालूम हुआ तो एक ग्रामीण ने कुदाली लेकर इस लिंग को निकालना चाहा। चोट पड़ते ही पत्थर से खून निकलने लगा। सरवाल वंश के एक राजपूत ने अपनी पगड़ी फाड़कर लिंग में बांध दो। तब से इसी जाति के लोग देव के कारोबारी होते हैं।

देव रूप : मोहरे

मढोड़ देव के रथ में इस ऐतिहासिक गाथा से संबन्धित उसके सेवक भड़ (बौड़) मनसा देवी (बनसाई) दरवाणी, दानो देव (सुन्नी का पौराणिक राजा) के मोहरे मिलते हैं।

इस देव की "पूजाएं" मंढोड़घाट (भज्जी शिमला), मांगू (अर्की) तथा कराड़ाघाट (अर्की) में है। कराड़ाघाट देवरे में मोहरो का प्रारूप इस प्रकार मिलता है।

देवी मनसा

देवी मनसा को बनसांई भी कहा जाता है जिसका साधारण अर्थ है वनी की देवी। यह मंढ़ोड़ घाट के लोगों की कुलजा थी। कुरगण की तरह यह इस क्षेत्र की महारानी थी जो संभवतः सती-साध्वी तथा प्रजाप्रिय थी। यही कारण था कि कुरगण को षड्यन्त्र के पश्चात इसकी शरण में जाना पड़ा था। लोक-विश्वास के अनुसार यह देवी किले काँगड़े से लाई गई थी। इस परिकल्पना से इस देवी की ऐतिहासिकता का पता चलता है। 'कांगड़े का किला' मध्यकाल में पहाड़ी आंचल में सुविख्यात था। कराड़ाघाट देवरे में इस देवी का 1½ फुट ऊंचा अष्टधातु का आकर्षक मोहरा है। मोहरे में छाती से ऊपर का भाग ही है। इस पर संवत 1982 अंकित हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि यह मोहरा इस संवत में बनवाया गया था। देवी ने हार पहन रखा है। मुखमुद्रा सौम्य है। इस देवी की तुलना पौराणिक देवियों से करना संगत नहीं लगता। यह आदिम लोक देवी है।

देव कुरगण

कुरगण के मोहरे में कुरगण अंकित हैं। यह अष्टधातु का मोहरा लगभग 1½ फुट के लगभग ऊंचा हैं। सिर पर राजाओं जैसा मुकुट, बड़ी मूछें तथा सौम्य आकृति है। धड़ के ऊपर का भाग चित्रित है। धड़ की आकृति झिलमिल सी टूटी हुई लकीरों से संकेतित की गई है। मोहरे पर टाँकरी भाषा में लिखा है— "चीमनू ब्राह्मण ने बणुए पराए, सरने लोहारे बणाए"। अर्थात् चीमनू ब्राह्मण ने मोहरे बनवाये। बनाने वाला सरन लोहार था। इस मोहरे में संवत 1982 अंकित है। इस वर्ष कहते हैं कि मांगू से देव का एक मोहरा मंढोड़ घाट से लाया गया था।

दानो देव

देव कुरगण के महल नलावण में थे तथा दोनों बहुत प्राचीन काल में (त्रेता में) सुन्नी का राजा था। दानो अथवा सहस्रबाहु की मान्यता सारे हिमाचल में प्रायः एक समान है। पुराणों में परशुराम-सहस्रबाहु का सुविख्यात प्रसंग वर्णित है। भगवान दत्तात्रेय जो भगवान शिव के अंशावतार थे ने सहस्रबाहु को सहस्रभुजाएं दान में दी थी। भगवान परशुराम ने सहस्रबाहु को युद्ध में मारा था तथा इक्कीस बार अत्याचारी क्षत्रियों को धरती से शून्य किया था। सहस्रबाहु को लोकप्रियता के कारण लोगों ने मंढोड़ देव के रथ में दानों का मोहरा भी रख लिया।

दानो का मोहरा एक फुट लम्बा तथा कांस्य निर्मित है। देव ने लपलपाती जीभ

बाहर निकाली है। आकृति के मध्य भाग में बाईं ओर लटकता हुआ सांप अंकित है। दायीं ओर त्रिशूल की आकृति है। आकृति सहस्त्रबाहु के पराक्रम तथा भयानकता के अनुकूल ही है।

बेणुका देवी :—यह मोहरा, 10 ईंच के लगभग दानो देव की पत्नी बेणुका का है। आकृति के निचले भाग में दो लहराते सांप हैं इस के अतिरिक्त एक अन्य मोहरा भी इसी प्रकार का देवरे में संग्रहीतहै।

देवी के इस मोहरे के साथ एक अन्य मोहरा दानो का ही है। एक अन्य देवी मनसा की चांदी की मूर्ति (मोहरा) जिस की लम्बाई 9 ईंच के लगभग है देवरे में सुरक्षित है। मूर्ति के कान में कांटे तथा नासिका में बालू है। यह मूर्ति किसी सामन्त द्वारा दान में दी गई थी।

भड़ अथवा 'भौड़' :—भड़ चनाल जो कुरगण प्रकाश का सेवक तथा अश्वपाल था देव के मोहरे के साथ संयुक्त है। इसी ने देव को मंढ़ोड़घाट तक किलटे में लाया था। इसे स्थानीय भाषा में "बौड" भी कहते हैं। इस का अष्टधातु का मोहरा 7 ईंच के लगभग है। सिर की आकृति के निचले भाग में लहराता हुआ सांप है। यह मोहरा देव यात्राओं में रथ में नहीं लगता। भड़ चनाल की स्वामी भक्ति थी कि उसे शूद्र जाति का होने के कारण भी देव के साथ सम्मान मिला। अधिकांश देव के कार्यकर्ता हरिजन जाति के इसी लिये परम्परा से देव के साथ हैं।

दरवाणी :—दरवाणी का अर्थ है द्वारपाल। यह बनसाई देवी का अंगरक्षक तथा द्वारपाल था। यह इतना शक्तिशाली था कि देवी के चौरे में पहुंचते ही भड़ चनाल को इसने पकड़ कर घोट दिया था यदि मनसा देवी दया न करती। मंढोड़ देव के इस दरवाणी को इस जनपद में अन्य देवों के दरवानों से अधिक शक्तिशाली माना जाता है। दरवाणी को मश्वाडी, लौंकड़ा, दुरानी, पड़ तथा दरवान आदि कई नामों से पुकारा जाता है। राज-व्यवस्था के अनुसार दरवाणी एक विश्वस्त तथा पराक्रमी अंगरक्षक राजा के साथ रहता था।

दरवाणी की शक्ति के विषय में विभिन्न जनश्रुतियाँ इन जनपदो में प्रचलित हैं। एक किम्वदन्ती के अनुसार यह रथ छत्र सहित देव यात्रा में इस क्षेत्र में कहीं घूम रहे थे कि किसी ने कह दिया कि यदि उसका इष्ट मंढोड़ इतना शक्तिशाली है तो इसी क्षेत्र के बाड़ू बाडा देव के दरवाणी का मुकाबला करे। फिर क्या था। क्रोध में आकर यह दरवाणी बाड़ू बाड़े के चौरे में गया। वहाँ उसने अपनी लोहे की गर्ज दे मारी। पलक झपकते ही देव का चौंरा घूमने लगा। यह इतना घूमा कि शिखर से सतलुज नदी में गिरने लगा था तब बाड़ू बाडे (सुकते) के दरवाणी ने क्षमा मांगी। उसका आतिथ्य सत्कार किया। कहते हैं तब से ही बाड़ूबाडे का चौंरा टेढ़ा हो गया है।

एक अन्य किम्बदन्ती के अनुसार एक बार बिलासपुर के राजा ने भज्जी क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। वह नारसिंह का भक्त था। उसने मंढोड़ देव का अपमान किया। मंढोड़ देव का दरवाणो अकेला गुर्ज लेकर निकला। कुछ ही क्षणों में उसने सब सैनिकों को घायल कर उनकी तलवारे घुट दीं तथा सभी सैनिकों को बाँध दिया बिलासपुर नरेश इस चमत्कार से हतप्रभ हो गया। मंढोड़ देव की दैवी शक्ति से ही तो दरवाणी में ऐसी अलौकिक शक्ति आ गयी थी। बिलासपुर राजा के हार मानने पर तथा दरवाणी और मंढोड़ देव को अपनी राजधानी में स्थापित करने की शर्त पर दरवाणी ने उन्हें नष्ट करने से छोड़ दिया। कहते हैं बिलासपुर नरेश ने अपनी राजधानी साँड़ू के मदान में मंढोड़ देव की स्थापना की थी। आज भी झील का पानी कम होने पर 'सांडू' मैदान में मन्दिर के अवशेष उभर आते हैं।

मंढोड़ के देवस्थलों में गणदेवता का मोहरा भी मिलता है। समस्त देव मूर्तियां राजा कुरगण की ऐतिहासिक गाथा की पुष्टि करती हैं।

पारम्परिक उत्सव :—देव मंढोड़ के उत्सव चैत्र मास की संक्रान्ति से प्रारम्भ होते हैं। इन्हें देव यात्रा कहा जाता है। जन साधारण अपनी मनौतियों के लिए देव के रथ-छत्र के साथ अपने घर पर देवता को नचाते हैं। अन्य देवों की भान्ति देवता के गुर (चेले) जिन्हें भणेते भी कहा जाता है "पूछ" (प्रश्न) आदि देते हैं। श्रद्धालु जन चेले के उत्तरों से संतुष्ट होकर देव को बकरा, नारियल, अन्न, रुपया आदि चढ़ाते हैं।

मंढोड़ देव का मुख्य मेला हरियाली संक्रान्ति सावन को मंढोड़घाट के स्थान पर मनाया जाता है। मंढोड़घाट दानोघाट, (अर्की) के रथछत्र के साथ ज्येष्ठ की पन्द्रहवीं तिथि को भी मेले में लाया जाता है। तत्तापानी में दशहरे के अवसर पर मंढोड़ देव रथ-छत्र के साथ नृत्य करता है। बहुत पहले कराड़ाघाट में सुखण नामक स्थान में इस देव का विशेष उत्सव होता था जिसे राजकीय स्तर पर मनाया जाता था। कहा जाता है कि सुखण के ऊंचे टिब्बे से सिरमौर साफ दिखाई दे जाता है।

मंढोड़ देव के वाद्य तथा साज बाज में देवरे में चंवर, साँकल, गुर्ज, चिमटा चाँदी की कई छड़ियां, रणसिंहा, जंगी ठोल, नगाडा, करनाल, ढोलक, नेचे और झण्डे रखे होते हैं।

देव मढोड़ के देवरे भज्जी, बाघल, धामी तथा संकेत के सभी गांवों में आज भो विद्यमान हैं। ग्रामीण समुदाय फसल प्राप्ति पर छमाही में आवश्यक रूप से देव मंढोड़ को रोट प्रसाद अर्पित करता है जो इस पितृ देव राजा के प्रति अटूट प्रेम तथा श्रद्धा की अभिव्यक्ति का प्रतीक है।

उच्च विद्यालय दाड़ला
जिला सोलन (हि.प्र.)

चम्बा जनपद में नाग

–हरिराम जसटा

चम्बा में अनगिनत नाग मंदिर है और कुछ नागनियों के मंदिर भी है। इन मंदिरों में मानवरुप के मुहरे हैं, जिसमें साथ लिपटे हुए हैं या मुकुट के साथ नाग कण हैं। कई मदिरों में पाषाण या लोहे के साथ बने हुए हैं साथ में त्रिशूल दीपक, धूपस्थान, गुर्ज, शागंल भी रखे होते है। पानी के स्त्रोत इन नाग के नियंत्रण में समझे जाते हैं। ये नाग मंदिर किसी वृक्ष के समीप बने होते हैं। मंदिरों के साथ वृक्षों को काटा नहीं जाता। मंदिर प्रायः लकड़ी और पत्थर के बने होते हैं। यह धारणा है कि नागों के अधिक मंदिरों का निर्माण चम्बा के राजा मूशावर्मा के समय हुआ, परन्तु कुछ मंदिर उस से भी पुराने हैं, जो बरनौंटा परगना के राणा के समय निमित हुआ था। चम्बा के प्रसिद्ध नागों की सूचि इस प्रकार है :—

सदर और चूराह में निम्नलिखित नागों को पूजा होती है :--

क्र.	नाग नाम	ग्राम	परगना
1.	बलोदर	नबी बनी	तीसा
2.	मलून	अल्वास	
3.	स्तोही	ब्रकुन्द	
4.	दाखला	छप्पा	
5.	कालू	सरनागरी	
6.	कालू, कलूथ	घार	
7.	महल	गूफा, जंगल	
8.	भुजगर	जागंल, भुजरेरू	
9.	कालंग	जागंल, कात्र कुंडी	
10.	महल	बनी	बरनोटा
11.	जमन		
12.	जमोरी		
13.	कलासार		
14.	खण्डबाल		

सोमसी

15.	थैर्नग	दिरोग	
16.	कालांग	मंगलाना	
17.	महल	सारू	
18.	सरवाल	मुंदल	
19.	तारवान	लुख	लोहटिकरी
20.	हिम	माहवा	
21.	हिमनाग	भरारवीं	
22.	काल	बाराहारा	
23.	भडारी	बटरूंडी	
24.	श्री बुद्ध	लम्होटा	
25.	बवातिर	भिवान	
26.	बलादर	गमहिर	
27.	लरहासन	शलाइ	
28.	छलासार	साह	
29.	कालन	चिल्ली	हिमगरिन
30.	मन्डाल	चन्दराला	
31.	स्थल	खग	
32.	परभित	अम्डेवास	
33.	स्थलेनी	सुदला	
34.	दयोतन	देयातन	
35.	महर	मगलाना	
36.	कालू		
37.	मानोवर	भराडा	
38.	महल	बहनाटा	लोहटिकरी
39.	नन्दायासुर	पधरा	
40.	बजिर	जुंथ	
41.	थिग	सातुन	
42.	थनग	गुसयस	साई
43.	महल	भोरास	
44.	मूहल	भैरू	
45.	थनग	देगरान	बैरा
46.	मथल	गुलेरा	
47.	कालू	बराल	
48.	थतग	खराथ	
49.	प्रधान	कुडियारा	बसोर

50.	थनग	बहनाटा	
51.	हिम	तलहाना	
52.	मन्डोल	सिरहा	जसौर
53.	पंज महल	बर्जौथ	
54.	बलोदर	जंगुल बनी	
55.	महल	”	कोहल
56.	सिन्धु	सुन्धार	तरियोड
57.	टाना	पुखरी	
58.	बजोग	सिरहा, राजनगर	
59.	बछोदर	बलदनी, खराट	
60.	महल	तलाई	घुंघ
61.	बगार	बरूनी	
62.	कराबर	सिनुर	
63.	सुधुन	सूई	गुदियाल
64.	भेडू	घाट, गूंड	भलेई
65.	महल	जमचर	बंद, बगोर
66.	थनग	घड़ी, घुरवां	साई
67.	सुंगल	गुलंला	
68.	महल	खडी	
69.	क्लान	बनी वलांडल	
70.	सागटा	सगवारी	
71.	सर	सरसारा	जुहुंड
72.	सर	बनी सराई	
73.	सुरमैर	जस्त	
74.	महल	भवीदान	भांदला
75.	करवार	चौतैद	
76.	मारार	चरतर	मांदल
77.	सुवाना	भरोगा	
78.	महल	चखुंतर	किहर
79.	खुल	बनी मतां	
80.	परहू	सगा की बनी	
81.	चरस	टिकरी, सिरू	मंजिर
82.	गुलघन	मजिर, बहिसालो	
83.	थनग	चखरा-मादल	
84.	तुंदी	उथलुगा-बधाई	
85.	जम्म	जम्महर	

सोमसो

86.	जम्मे	बरीं दो	
87.	मलन्दे	मलुद	
88.	खल्लरि	खाल्लरू	
89.	दित्तू	खट्टार	पंजला
90.	सुरज	गुद्दा	
91.	राह	राह	
92.	जम्मू	भाला	
93.	दरावी	चलाई	साहू
94.	दुखदू	भिघर	
95.	बुधू	लंगेरा-भांदल	

भरमौर क्षेत्र में नाग

1.	बदवाला	औराह	भरमौर
2.	बासक	धार या बासकाहर	समरी
3.	वासकी	सर	लिल
4.	बासन	धार या बासकाहर	समरा
5.	बिजकू	महला	महला
6.	बुनरू	त्रेहटा	त्रेहटा
7.	दिग्वनपाल	बगूला	महला
8.	घनाहाहू	घ'हर	भरमौर
9.	दिग्घ	बरग्रान	भरमौर
10.	गुलधरे	पुलनी	भरमौर
11.	इन्द्रनाग	समरा	काठी रनहू
12.	,,	उराई	,,
13.	,,	सुनाओ	चनौता
14.	,,	लाम	,,
15.	,,	कबारसी	,,
16.	,,	धाकला	कोठी साहू
17.	,,	सुलखर	भरमौर
18.	कलिहर या कैलांग	कुगती	भरमौर
19.	कुयरहू	धामिया	,,
20.	,,	पालनी	,,
21.	कैलांग	कालाहू	त्रैहता
22.	लाट	पजसाई	भरमौर
23.	महल	रचना	लिल

24.	महल	भनया	महला
25.	,,	कुलबारा	बाकान
26.	परौहल	भामल	लिल
27.	पुन या इन्द्रनाग	सुतकर	लेहता
28.	सन्दाहला	गाबारी	भरमार
29.	हमासी	बागरा	महला
30.	सहरा	सिनैर	सामरी
31.	सतूहर	तुर	बस
32.	सतूहरू	शिकरोना	लिल
33.	सतूहर	बादला	लिल
34.	खुगहर	कुछी	बस
35.	समान	बालानदरैदिबासी	५.लांदरा

पांगी क्षेत्र में निम्नलिखित नाग प्रसिद्ध हैं :—

क्र.	नाग	ग्राम	परगना
1.	दान्ती		
2.	कासिर	दरवास	दरवास
3.	बसिर		
4.	बनेक देव	सुरकल	
5.	दत	किलार	किलार
6.	जगसर	साच	
7.	परार		
8.	माल	हेलौर	साच
9.	जरयन	कुताल	
10.	दिगल पानिहर गिसाल		
11.	कुटासन		
12.	बिरू	सालही	
13.	जतरून		
14.	दौसर	मछिम	
15.	करन	हेलू	
16.	कानत		
17.	वनिरे	भरमौर	साच
18.	बाम्बो	शौर	
19.	किदारू		

उपर्युक्त सूची में से स्पष्ट हो जाता है, कि हिमाचल प्रदेश के अन्य जनपदों की अपेक्षा चम्बा में नागपूजा का अधिक प्रचलन है। स्थानीय लोग सूखा या काल, मनुष्य या जानवरों में बिमारियां फैल जाने पर या व्यक्तिगत कठिनाई के समय मंदिर में जाते हैं और विशेष पूजा करते हैं। कई बार भेड़ बकरियों का बलिदान भी दिया जाता है। पांगी क्षेत्र में महीना भर सावन में गाय का दूध नाग को भेंट किया जाता है। तभी वह शुद्ध समझा जाता है।

इन में से कुछ अधिक प्रसिद्ध नागों के बारे में अनेक कथायें प्रचलित हैं। कहते हैं चम्बा का प्रसिद्ध नाग वासुकि या वासक नाग जम्मू के भद्रवाह क्षेत्र से 200 वर्ष पूर्व लाया गया था, क्योंकि चम्बा के पशुओं में बीमारी फैल गई थी। इसी तरह वासन नाग और नागनि को भी भद्रवाह से और दिग्घू नाग को पांगी से लाया गया था। फलस्वरूप पशुओं में फैली बीमारी दूर हो गई थी।

जैसे पहले कहा गया है कि तक्षक नाग को हिमाचल प्रदेश में कई जगह इन्द्रूनाग के नाम से कई जनपदों में चम्बा, मंडी और कांगड़ा में पूजा जाता है। इन्द्रूनाग का सम्बन्ध इन्द्र से इसलिए जोड़ा जाता है, कि सर्प यज्ञ के समय तक्षक नाग इन्द्र के आसन के साथ लिपट गया था परन्तु मन्त्र शक्ति के बल से इन्द्रासन यज्ञ की ओर उड़कर गिरने लगा। तब वासुकि की सहायता से वह बच गया। परम्परा अनुसार इन्द्रनाग सुकेत (मंडी) के राणा का गृहदेवता माना जाता है। युद्ध के समय जहां जहां राजा गया वहां उसने इस नाग के मंदिर बनाए और पुजारी बढ़ा दिए। इन्द्रनाग के एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में सांकल है।

कलिहर नाग जिसे प्राय केलांग नाग से जाना जाता है, इसका मूल निवास लाहौल में ही माना जाता है। कई सौ वर्ष पूर्व कुगती के लोगों ने उसे तब लाया, जब वहां जानवरों में बीमारी फैल गई थी। वहां के लोगों ने उस के लिए मेला लगाने की शपथ उठाई, यदि बीमारी हट जाये। परम्परानुसार कैलांग एक सांप के रुप में एक मेंढे के सींगों पर लाहौल से आया और दुत्री के स्थान पर रुका जो वर्तमान मदिर से दो मील की दूरी पर है। तीन पुश्तो तक वहां ठहरने के बाद नदी स्रोत के पास ऊंची जगह पर दारून स्थान पर चला गया। यह जगह अत्यन्त ठंडी और पहुंचने के लिये अत्यंत कठिन थी। लोगों ने चेला द्वारा नाग से नीचे उतरने की प्रार्थना की। नाग ने चेला द्वारा कहा, कि वे उस जगह से लोक वाद्य माणा फूंके, जहां वह रुक जाए, वहां उस के लिए एक मंदिर बना दिया जाए। वहाँ बुनियाद खोदते समय उन्हें पाषाण की त्रिमुखी प्रतिमा मिली। जब उन्होंने उसे उठाया तो वहां से एक चश्मा फूट पड़ा। इस मूर्ति में नाग पद्मासन में बैठे हैं। चम्बा के राजा श्री सिंह ने मदिर के लिए एक दूसरी अष्टधातु की मूर्ति भेंट की, जिस के दायें हाथ में लाठी है। इस के सिर पर सांपों की शक्लें बनी हैं। इसके गले में चकलास का हार, जनेऊ, तरागी और वस्त्र पर सभी सांपों के रूप बने हैं। यह मंदिर माघ संक्राँति से लेकर बैशाख संक्रांति तक बन्द रहता है।

पांगी में किलार के स्थान दैतनाग की पूजा होती है। पहले वह लाहौल में रहता था, जहां कभी इसे मानव बलि भी दी जाती थी। कहते हैं एक बार एक बूढ़ी विधवा के इकलौते बेटे के बलिदान की बारी आ गई और वह जोर जोर से चिल्ला कर रो रही थी। अचानक इधर से एक गद्दी ने उसके रोने की आवाज सुन ली। उस ने सारी व्यथा सुनकर स्वयं को उसके स्थान पर जाने के लिए कहा। उसने यह शर्त लगा दी, कि नाग उसे सारा हड़प कर दे और जब उसने शरीर के प्रत्येक भाग बारी बारी देने प्रारम्भ किये और उन को नाग ने कुछ नहीं किया, तो उसे क्रोध आ गया और उसने नाग को चन्द्र-भागा नदी में फेंक दिया। किलार के स्थान पर वह नदी से बाहर निकला। वहां से उसकी प्रतिमा एक ग्वाला पीठ पर उठाकर वर्तमान मंदिर के स्थान तक लाया, जहाँ उसकी पीठ से प्रतिमा गिर कर मुंह के बल नीचे गिरी। पीठ बाहर की ओर थी। वहाँ मंदिर बनाया गया और पीठ दिखाती हुई मूर्ति इस में स्थापित की गई। इस मंदिर के चारों ओर देवदार के वृक्ष उग आए।

कथुरा नाग का सम्बन्ध दालों से और सन्धोला नाग का सम्बन्ध जौ से जोड़ा जाता है। नाग को खाण्डा और कुंडी भेंट की जाती है, जिन्हें मंदिर के पास रख दिया जाता है। कभी कभी भेड़ की बलि दी जाती है।

चम्बा नगर में कालिया नाग का एक पुराना मंदिर है, जिस में कालिया नाग की बड़ी मूर्ति स्थापित की गई है।

चम्बा जनपद में कृष्ण लीला मुसाहदे नामक लोकगीतों में गाई जाती है। इन मुसा-हदा को गाने वाले भी मुसाहदे ही कहलाते हैं। इन्ही मुसाहदों में एक प्रसिद्ध लोकगीत श्री कृष्ण द्वारा नाग मंथन भी है :—

नाग मंथने जो आए जी, सूंक मारी कालीहर नाग जी,
श्याम रंग भगवान कुंडीहथ बीच लैई जी।
मुंडी पैरा हैठ लैई नाग नथी लए जी,
नागनी खड़ी होई पति की मेरे जान रखो जी।

कहते हैं चम्बा के राजा आनंदवर्मा (1475 ई.) का विवाह कांगड़ा के राजघराने से हुआ था। एक बार जब वह अतिथि बनकर कांगड़ा आए तो वहां उसकी देवी शक्ति की परीक्षा हेतु भोजन मेज पर परोसा गया, और उसे दूर रखा गया। उस पर एक तीन मुंह वाला जग (मुसरवा) रखकर राजा ने अपना चमत्कार दिखाया। एक एक कर भोजन की मुंह मांगी वस्तु उठकर स्वयं राजा के पास आ जाती। पानी पीते समय राजा के नाक से दो नाग निकले, जिन्होंने जग के अन्य दो मुखों का प्रयोग किया। इस से आनन्दवर्मा पर नाग भक्ति का चमत्कार स्पष्ट होता है।

चम्बा में नाग देवता वर्षा लाएगा, गाय दूध देगी, बछड़ा हल चलाएगा। नाग की पूजा में लस्सी, दूध और घी होता है। प्रथम बार दुहा गया दूध, प्रथम बार बनाई गई छाछ और प्रथम बार तैयार किया घी यदि नाग देवता को भेंट नहीं हुआ तो गाय, बछड़े पर अवश्य प्रकोप होगा। नाग देवता के लिए घी का पात्र भर कर रखा जाएगा। परिवार में तब तक घी का प्रयोग नहीं होगा जब तक नाग देवता के मन्दिर में जाकर घी से उसका पूजन नहीं किया जाता। चाहे आठ मील दूर का सफर करके यह कार्य पूर्ण क्यों न किया जाए। कभी-२ गृहिणी अथवा घर का बड़ा सदस्य महीनों घी का प्रयोग नहीं करता जिस दिन तक पूजन नहीं किया जाता। जब तक घी नहीं चढ़ाया जाता छाछ प्रयोग में कर ली जाती है। बाकि सारा परिवार उस दिन से दूध और घी का प्रयोग आरम्भ कर देगा जिस दिन से नाग देवता का घी पवित्र स्थान पर उठा कर रख दिया जाए।

प्रत्येक नाग की अपनी चरागाह और क्षेत्र विशेष का राजा माना जाता है लेकिन वासुकि नाग की चरागाह में चरने वाली गाय वासु नाग की सम्पत्ति भी हो सकती है अतः वासु नाग को मानना जरूरी होगा।

नाग देवता अधिकतर शाकाहारी होते हैं बहुत कम नाग मांसाहारी होते हैं। जिस मन्दिर का नाग देवता मांसाहारी होगा उसे नर मेड़ की बलि दी जाती है। अन्य नागों का पूजन घी, छाछ और दूध से किया जाता है।

नागदेवताओं के मन्दिर ऊंचे टीले पर पहाड़ी शैली में बने होते हैं। इन में कुछ कलात्मक और कुछ साधारण मूर्तियों का समावेश है। नाग को साँप की तरह रेंगता हुआ दर्शाया जाता है। किसी किसी मूर्ति में नाग देवता को मानवाकृति में आसपास साँपों से घिरा बताया गया है। लोहे की शिलाकाओं और पीतल और चांदी से बने साँप भी मन्दिर में रखे गये हैं। लकड़ी पर भी नाग की मूर्ति चित्रित हुई है। कुछ मन्दिर भव्य है जिनमें गर्भ गृह और प्रवेश द्वार का निर्माण हुआ है। इस प्रकार के मन्दिरों में गुप्त-कालीन मूर्तिकला का सुन्दर स्वरूप मिलता है। परगना लिहल के पर्वत शिखर पर इसी प्रकार का वासुकी नाग का मन्दिर अपना भव्य रूप लिए हुए है। मन्दिर के बाहर पत्थर की नंदी मूर्ति अपना आकर्षण लिए है। मन्दिर खुले मैदान में है। इस नाग के पूजन के लिए दूर दूर से श्रद्धालु लोग आते हैं।

कुमार भवन,
(इंजनघर)
संजोली, शिमला-६

हिमाचल कला–संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला—171001

अकादमी के प्रकाशन

क्र.	पुस्तक का नाम	अकादमी के प्रकाशन	मूल्य
1.	ऋतम्भरा	हिमाचल के संस्कृत कवियों की कविताओं का संकलन	6.00
2.	श्यामला	हिमाचल के हिन्दी कवियों की कविताओं का संकलन	15.00
3.	माल़ा रे मणके	हिमाचल के पहाड़ी कवियों की कविताओं का संकलन	6.00
4.	तरतीब	हिमाचल के उर्दू शायरों के कलाम	15.00
5.	पहाड़ी लोक रामायण	हिमाचल में प्रचलित राम कथा के सम्बन्ध में समीक्षात्मक लेखों और निबन्धों का संकलन	12.00
6.	छनाट	संस्कृत के महाकवि भास के छः नाटकों का पहाड़ी भाषा में अनुवाद	12.00
7.	देई जुल्फू	कुल्लू में औटर सिराज क्षेत्र में प्रचलित दशी काव्य के आधार पर विरचित संस्कृत काव्य	6.00
8.	इन्द्रकात्यम	हिमाचल के सिरमौर और कांगड़ा जनपदों की ऐतिहासिक गाथा के आधार पर विरचित संस्कृत काव्य	15.00
9.	कथा सरवरी भाग-I	सिरमौर, महासू, कुल्लू जनपदों की लोक कथाएं "पहाड़ी में"	2.50
10.	कथा सरवरी भाग-II	चम्बा, कांगड़ा, मण्डी, बिलासपुर जनपदों की लोक कथाएं "पहाड़ी में"	2.50
11.	तीन लोक नाटिकाएं	हिमाचल में प्रचलित लोक कथाओं के आधार पर अकादमी द्वारा संयोजित, विरचित, मंचित तीन नाटक	5.00
12.	हिमाचल के संस्कार गीत	संस्कार गीतों का संकलन	20.00
13.	पहाड़ी रचनासार	पहाड़ी के विशिष्ट लेखों का संकलन	10.00
14.	सोमसी	हिमाचल की कला-संस्कृति व भाषा के शोध पूर्ण लेखों का त्रैमसिक पत्रिका	3.00
		वार्षिक चन्दा	12.00

H.A.A.C.L. आर० एम० 2827/75

१. निदेशक शिक्षा विभाग, हि० प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी एन-एच (8-6 (3) 1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

२. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला द्वारा प्रसारित तथा हिमाचल लिथोग्राफर्स हिमलैंड होटल, शिमला-171001 (हि० प्र०) द्वारा मुद्रित।